भूमिका

भारतमाता का मातृ रत्न प्रसविनी है। उसने अपनी कोख से अनेक रत्न उत्पन्न किये हैं। इन पुरुष और स्त्री दोनों जाति के अनमोल रत्नों की कथाएं हमारे देश के साहित्य में भरी पड़ी हैं। परन्तु इस समय हमको अकेली नारी-रत्नों की ही आख्यायिकाओं से प्रयोजन है। भारत की नारियां मूर्ख और गंवार होती हैं, यही ध्वनि इस समय चारों ओर सुन पड़ती है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन से प्राचीन वैदिक युग से लगाकर आज तक भारत की नारी पातिव्रत, विद्या, साहस, वीरता और राज्य-शासन जैसे कठिन कामों में भी अपनी कीर्ति अटूट, अनुकरणीय और अमर बना रखने में समर्थ पाई गयी है। नारी-जाति के उज्ज्वल रत्नों की कथाएं इस युग में लोग भूल से गये हैं और इसीलिए इस देश की दशा भी दिन दिन बिगड़ने लगी है। हर्ष की बात है कि इधर कुछ थोड़े समय से हिन्दी बोलनेवाले समाज में भी देश और समाज के हित के लिए स्त्रीजाति की उन्नति की आवश्यकता समझी जाने लगी है और इसीलिए नारी-रत्नों के चरित्र-विषयक पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगी हैं। इन चरित्रों का लिखना व्यर्थ है, इस विषय पर जितनी अधिक पुस्तकें प्रकाशित होने लगें उतना ही समाज के लिए अच्छा होगा। इसी विचार से कई

अच्छी अच्छी पुस्तकों के होते हुए भी हमारी "नारी-रत्न-माला" भी हिन्दी संसार में आगे बढ़ने का साहस करती है। यदि हमारे नर-नारी-समाज ने इस रत्न-माला को आदर से अपने हृदयों पर धारण किया तो लेखक का परिश्रम सफल होगा।

सूची-पत्र

नारी-रत्न-माला

अहिल्याबाई

ईसवी सन् १६९३ में एक दरिद्र कुल में मल्हारराव होलकर का जन्म हुआ। मल्हारराव का पिता खंडूजी पूना से २० कोस दूर होल नाम की एक बस्ती में खेती-बारी और पशु-पालन करके रहता था। मल्हारराव भी अपने नाना के घर भेड़ चराया करता था। परन्तु होते होते वही गड़रिया बालक इतना बढ़ा कि मराठों के सरदार पेशवाओं की नौकरी में वह ८२ ज़िलों का सूबेदार हो गया था। अहिल्याबाई इसी सूबेदार मल्हारराव के पुत्र को ब्याही थी। उसका जन्म मालवा प्रान्त के पाथरडीह गाँव में १७२५ ई० में हुआ था।

अहिल्या बचपन ही से बड़ी धर्मात्मा थी। ९ वर्ष की उम्र में उसका विवाह हुआ था। उसने बाल्यावस्था ही में किसी सदाचारी ब्राह्मण से दीक्षा ले ली थी, और कहीं लड़की समझ उसके सास, ससुर, उससे नाराज़ न हो जावें, इस भय से वह बहुधा उनसे छिपकर भगवान् का भजन-पूजन किया करती थी। उसका जन्म शूद्र वंश में हुआ था, पर आचरण उसके बिलकुल ब्राह्मणों के से थे। स्वभाव उसका ऐसा सुन्दर और पवित्र

था कि वह अपने गुणों से अपना पराया सभी को सुख पहुँचा सकती, और सब की ओर उसकी करुणा सहस्र धाराओं में दौड़ा करती। ऐसी सच्चरित्रा नारी को संसार में बहुत काल तक दाम्पत्य सुख भोगना नहीं बदा था। सन् १७५३ में भरतपुर के पास कुम्भेरी का दुर्ग घेरने के समय अहिल्या का पति खंडेराव मारा गया और उसी दिन से अहिल्या के सांसारिक सुख की आशा भी मिट गयी। ढलती अवस्था में सूबेदार मल्हारराव को भी इकलौते बेटे के अकस्मात् मारे जाने से दारुण दुःख मिला। अहिल्या इस समय कुल १८ वर्ष की थी, और इसी काल में वह एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दे चुकी थी। अब पति का मरण—समाचार सुन वह बहुत शोकाकुल होकर चिता पर पैठ मर जाने के लिए तैयार हो गयी। बहुतेरे मनुष्यों ने उसे इस कार्य से रोका, पर उसने किसी की बात न मानी और अपने प्राण दे देने की ही ठान बैठी। तब उसके बूढ़े ससुर मल्हारराव नेत्रों में आंसू भर गद्गद् कंठ हो कहने लगा—"बेटी! क्या तू मुझ बूढ़े को इस लू से तपे हुए संसार की मरुभूमि में बिना सहारे और छायारहित ही छोड़कर जाना चाहती है! मेरी इस बुढ़ाई में खंडूजी मुझे दारुण शोकसागर में डुबा गया, मैंने सोचा था कि तेरा मुख देखकर ही मैं उसका शोक भूल सकूँगा। राज्य के सम्हालने में तू मेरी सहायता करे

तो मैं समझूंगा कि मेरी अहिल्या मर गयी, मेरा खंडू जीता है। मुझको युद्ध-यात्राओं और राज्यविस्तार आदि कामों से छुट्टी नहीं मिलती। अब राज्य का भीतरी प्रबन्ध मैं तेरे हाथों सौंपकर निश्चिन्त होना चाहता हूं। अब तेरे जो जी में आवे सो कर।" यों कह कर सूबेदार पतोहू के सामने अकुलाकर बालकों की तरह फूट फूट कर रोने लगा। करुणामयी अहिल्या को दुस्सह पतिवियोग के दुख से मुरझाते हुए भी, बूढ़े ससुर को "इष्ट देवता के समान पूज्य" जानकर उसके कहने से चिता पर भस्म हो जाने का सङ्कल्प छोड़ देना पड़ा।

सांसारिक बोझ कंधे पर लद जाने से अहिल्या अपना दुख कुछ न कुछ भूल सकेगी ऐसा विचार मल्हारराव ने उसको राज-काज का बहुत सा अंश सौंप दिया। आय, व्यय, लाभ, हानि का लेखा देखना, आश्रितों की रक्षा और नौकरों की देख-भाल आदि काम अहिल्या को मिले। मल्हारराव सन्धि, विग्रह और देश विजय आदि बाहरी कामों में लगा रहता; परन्तु राज्य का भीतरी प्रबन्ध अहिल्या ही किया करती। धन का संग्रह मल्हार-राव ही करता, परन्तु हिसाब से उसका खर्च करना पतोहू के हाथ था. कर्मचारी लोग अहिल्या के आदेश बिना कुछ न कर सकते। अहिल्या जमा खर्च का हिसाब स्वयं देखती, और अपने

लोगों ने राघोबा दादा और गंगाधर यशवन्त की अनीति की चाल ताड़ ली, और तुरत धर्म-परायणा विधवा की रक्षा के लिए तैयार हो गये। बड़ौदा के गायकवाड़ ने तो तुरत २०००० सेना भेज दी। जन्हुजी भोंसला सेना सहित होशंगाबाद से चल पड़ा। अहिल्याबाई ने पेशवा माधवराव और उसकी पत्नी रानबाई को भी पत्र भेज दिया। पेशवा ने उत्तर में लिखा कि आपका इन्दौर के राज्य पर अधिकारी रहना हम को बिलकुल पसन्द है। कोई आपकी सम्पत्ति लूट लेना चाहे तो आप उसे निस्सङ्कोच होकर दण्ड दीजिए।

तब अहिल्या ने अपने विश्वासपात्र कर्मचारी तुकोजीराव होलकर को अपना सेनापति बनाकर उसे सेना संग्रह करने की आज्ञा दे दी। तुकोजी उम्र में बड़ा होने पर भी अहिल्या को "मातु श्री" कहकर पुकारता था। अन्तःपुर की कुलवधु होने पर भी अहिल्या ने युद्ध-सङ्कट में मंजे हुए सैनिक पुरुष की भांति ऐसी फुर्ती और सुप्रबन्ध के साथ इन सब कामों को कर डाला कि सारे अनिष्ट की जड़ गङ्गाधर भी देख सुनकर दंग हो गया। उसने राघोबा को समाचार भेजने में देर न की। होलकर लोग पेशवा-वंश के पुराने नौकर हैं, यह समझ राघोबा दादा अहिल्या से यों ही कुछ घृणा माना करता था। पर उसी-

के लिए तैयार मिलूंगा। आगा पीछा सोच जैसा उचित जंचे कीजिए।"

तुकोजी के इस गर्वित संदेशे से राघोबा डर गया। अहिल्या की तैयारी देख उसकी शेखी हलकी पड़ गयी। अब उसको साफ लख पड़ा कि इस अनाथा विधवा को दबा लेना उतना सहज काम नहीं है जैसा समझा था। उधर पेशवा की भी इस युद्ध में सम्मति नहीं थी। सो अहिल्या से विरोध करने का उसे और साहस न रहा। पर अब क्या करता, अपनी कुटिलता छिपाने के लिए उसने तुकोजीराव को कहला भेजा कि मालीराव का परलोकवास सुन मैं अहिल्या को सान्त्वना देने के लिए आया हूँ। तुकोजी ने फिर पुछवाया कि यदि आप कृपालु होकर ही आये हैं तो इतनी फौज लदाकर साथ लाने की क्या आवश्यकता थी! राघोबा ने जान लिया कि तुकोजी के मन की शंका चालबाजी के उत्तर मात्र से नहीं मिटी है। तब वह एक पालकी में बैठ, अपने सङ्ग दस ही बारह सर्दार लेकर होलकर की छावनी में जा पहुँचा। तुकोजी ने बड़े आव-भगत से राघोबा का आदर-सत्कार किया और छावनी से बाहर तक पैदल आकर राघोबा के पैर छुए। तब दोनों मालीराव के लिए शोक मनाने लगे।

दूसरे दिन राघोबा दादा अपनी सेना वहीं छोड़ तुकोजी के साथ इन्दौर गया और उसने अहिल्याबाई से भेंट की। वह एक महीना तक वहीं रहा। महीने भर में सेव्य और सेवक के कर्त्तव्य की बात छेड़कर वह अहिल्या से बातचीत करता रहा। भांति भांति के राजनीति के दाँव पेंच मारे। पर अहिल्या मल्हारराव के ही समय से सब बातें भली भांति जानती थी। उसके उचित उत्तरों के सामने राघोबा की सब युक्तियां खंडित हो गयीं। गंगाधर और राघोबा ने सबको समझाना चाहा कि अहिल्या कितनी ही बुद्धिमती क्यों न हो, तब भी वह रमणी है। किसी योग्य पुरुष के हाथ काम-काज सौंपे बिना चारो ओर के शत्रुओं से मल्हारराव की सम्पत्ति की रक्षा नहीं हो सकती। पर अहिल्या ने किसी की चाल न चलने दी। अभिमानी राघोबा का उसने ऐसा सत्कार किया कि उसको अपना सा मुंह लेकर लौट जाना पड़ा। अहिल्या ने षड्यन्त्री गंगाधर को भी ससुर का पुराना नौकर मान उसे फिर उसके पुराने पद पर ही रख लिया। इसका फल यह हुआ कि गंगाधर को अपने किये का ऐसा पछताया हुआ कि वह गृहस्थी छोड़ संन्यासी बनकर कहीं चला गया। बिना रक्त बहाये, बिना किसी के प्राण लिये, अहिल्या ने अपनी बुद्धिमानी ही से इस प्रकार अपने शत्रुओं को नीचा दिखाकर होलकर राज्य की नींव पक्की कर ली।

ज्योंही राज्य की मर्यादा रह गयी, ज्योंही प्रभुशक्ति की परीक्षा और प्रतिष्ठा हो गयी, उसी क्षण अहिल्या ने तपस्विनियों के योग्य वैराग्य ले अपना सारा काम दूसरे के हाथ सौंप दिया। एक ओर नारीजनों की भांति कोमलता, दूसरी ओर पुरुषोचित कठोरता—ये दोनों गुण उसके स्वभाव में ऐसी सुन्दरता से मिले हुए थे कि ऐतिहासिक महिलाओं में उसकी बराबरीवाली बहुत कम देख पड़ती हैं।

[२]

हम कह चुके हैं कि जब तक आवश्यक था, अहिल्या ने पुरुषों जैसा साहस और चित्त की दृढ़ता दिखाकर अपने अधिकार की रक्षा की। सुख या विलास के लिए उसने प्रभुता न ली थी। राज्य के कल्याण के लिए एक पुरुष सहकारी की आवश्यकता जान उसने तुकोजी को राजकाज सौंपा। तुकोजी साहसी, धीरजवाला और चतुर पुरुष था। अहिल्या को वह बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। अहिल्या भी उस पर पूर्ण विश्वास रखती थी। तुकोजी सन्धि, विग्रह, भीतरी शान्ति स्थापन आदि कामों को सम्हालता। अहिल्या निश्चिन्त हो प्रजाकुल के कल्याण और धर्मचर्चा में लगी रहती। उसने राजशक्ति का ऐसा विभाग कर लिया था कि कभी किसी

कहा करती कि "जिसे स्वयं भी मरना है उसे सर्वशक्तिमान के बनाये हुए किसी जीव के प्राण लेते समय विशेष रूप से चिन्ता कर लेनी चाहिए।"

साधारण रमणियाँ झूठे कामों या असार बात-चीत में अपना बहुत सा समय बिगाड़ा करती हैं। अहिल्या कभी ऐसा नहीं करती थी। बे-मतलब झूठ मूठ समय नष्ट करना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। वह सूर्य उगने से पहिले ही नित्य-कर्म से छुट्टी पा, सन्ध्या-वन्दन कर, नित्य नियम से रामायण, पुराण आदि धर्म-ग्रन्थ सुना करती। उस समय उसके द्वार पर भिक्षुकों की भीड़ जमा हो जाती। वह उन सब को अपने हाथों से भिक्षा देती। तब ब्राह्मणों पंडितों को न्योता दे बड़े प्रेम से भोजन करवाती। अन्त में आप भी कुछ खा लेती। अपने खाने-पीने में वह बड़ी सदाचारिणी थी। होलकर वंश के मरहठे जिस जाति में उत्पन्न हैं, उसकी विधवाओं के लिए मांस खाना निषिद्ध नहीं है। परन्तु अहिल्या कभी आमिष नहीं छूती थी। यहाँ तक उसका कठिन नियम था कि विधवा होने पर उसने कभी मीठी वस्तु भी नहीं खाई थी। भोजन के उपरान्त बहुत थोड़ी देर के लिए वह तनिक आराम करके राज-सभा में आ बैठती और वहाँ सन्ध्या तक काम किया करती। सभा भङ्ग होने पर लगभग तीन

घंटे तक यह सन्ध्या, पूजन आदि में लगी रहती। तब फिर राज-कार्य की आलोचना करती। इस प्रकार नित्य-कार्यों को सम्पूर्ण कर रात्रि के ग्यारह बजे यह सोने जाती। देव-पूजा, व्रत, उपवास और राज-कार्य में यह कभी आलस्य न करती। महाराष्ट्र देशों में उस समय जितने प्रकार के उत्सव और धर्मानुष्ठान होते थे, उन सब को यह बड़े यत्न और श्रद्धा से करती। बहुत से लोग तो केवल सामाजिक रीति पूरी करने के लिए ही पूजा-पाठ करते हैं। अहिल्या वैसी न थी। उसके धर्मानुष्ठान गहरे विश्वास और भक्ति की नींव पर जमे हुए थे। दीन-दुखियों की सेवा, गुरुजनों का सम्मान, राज-काज, इमारत बनवाना, सन्धि, विग्रह, सभी उसके पास धर्मानुमोदित माने जाते थे।

उस समय मध्य-भारत में बहुधा अशान्ति ही रहती थी। आपस में लड़ते झगड़ते जंगली श्वापदों की भाँति एक ओर लुटेरे दुर्दान्त मराठे, दूसरी ओर जाट, रोहेले, पिंडारी आदि अनेक जाति और धर्मवाले सैनिक-डाकुओं के उपद्रव से मध्य-भारत उस समय नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था। ऐसी संकट दशा में अहिल्याबाई अपने राज्य में शान्ति और सुशासन बनाये रख सकी, यह कुछ थोड़ी बड़ाई की बात नहीं है। उसके नाम का

करने चला। रानी अहिल्या उस समय वहां नहीं थी। वह तीर्थ को गयी थी। सेठानी वहीं अहिल्या के पास जाकर अपना दुखड़ा रोने लगी। अहिल्या ने सब हाल सुनकर उसे बड़े आदर से लौटा दिया और तुकोजी को इस प्रकार अत्याचार करने से रोक दिया। इस कार्य से राज्य भर में रानी की न्यायशीलता का यश फैल गया। वह अपने किसी कर्मचारी का अत्याचार नहीं सह सकती थी। उसने एक बार मालगुजारी वसूल करनेवाले किसी अफ़सर से कहा—"आप याद रक्खें, समय पर मालगुजारी वसूल करने के बदले आप प्रजा को सुखी बना सके हैं, ऐसी बात सुनूंगी तो मुझको अधिकतर आनन्द होगा।"

एक बार एक दूसरा धनी सेठ मर गया। उसके भी कोई सन्तति न थी। विधवा सेठानी किसी बालक को गोद लेने लगी। अहिल्या के एक कर्मचारी ने उसे डरा कर कहा कि तीन लाख रुपये हमको दो तब गोद लेने का हुकुम दिया जावेगा। सेठानी अहिल्या के शरण आयी। अहिल्या ने सब बात सुन अत्याचारी कर्मचारी को उसी दम नौकरी से हटा दिया, और सेठानी ने जिस बालक को गोद लिया था, उसे बड़े प्रेम से सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहिराकर माता की गोद में रख, उन दोनों

को पालकी में बैठा विदा कर दिया। सेठानी ने बड़ी
से रानी को बहुमूल्य सामग्रियां भेंट देनी चाहीं, पर रानी ने
उसकी ऐसी बात नहीं सुननी चाही।

और भी एक दृष्टान्त लीजिए। उसकी प्रजाओं में दो
धनवान भाई थे। वे भी निस्सन्तान मर गये। उनके पास भी
बहुत धन सम्पत्ति थी। पर कोई वारिस नहीं था। बड़े भाई की
पत्नी दत्तक पुत्र न लेकर पति और देवर दोनों की सम्पत्ति
अहिल्याबाई को देने के लिए आयी। इस प्रकार स्वेच्छा
दिया हुआ दान ले लेना अहिल्या के लिए अनुचित न होता
पर उनके हृदय में स्वार्थ का नाम भी नहीं था। उसने विधवा
सम्पत्ति न ली। विधवा के बार बार विनय करने पर अहि
बोली—"यदि तुम को अपने लिए धन की कोई जरूरत नहीं
तो अपने स्वर्गवासी पति के स्मरणार्थ देव-सेवा और
साधारण के हितकर कामों में इसे खर्च कर दो। मैं इसी
प्रसन्न होऊंगी।" अहिल्या के कहने अनुसार विधवाओं ने स
सम्पत्ति भांति भांति के हितकर कामों और देव-मन्दिर बन
में लगा दिया। अहिल्या का न्याय-प्रेम, निस्स्वार्थता आदि
स्वरूप में आज तक कितनी ही दन्त-कथाएं सुनी जाती
दत्तक पुत्र लेने वालों से कुछ भेंट लेना पुरानी रीति मानी

और चुरा या लूट लेने में कुछ अन्तर न होगा। सेठानी को ऐसा उत्तर लिख दो—तुम दत्तक पुत्र लेने की इच्छा रखती हो, सुनकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। पहिले की भांति तुम अपने पति का नाम और प्रतिष्ठा की रक्षा करती हुई उनकी कमाई से सुख से रहती हो, ऐसा सुन पड़ेगा, तो हमको बहुत ही आनन्द मिलेगा। अपने पति की सम्पत्ति की तुम ही अधिकारिणी हो। तुमसे कुछ भेंट नहीं लिया गया। भगवान् की दया से इस भांति की भेंटों से राज-कोष का धन बढ़ाने की आवश्यकता अभी नहीं हुई है।" निदान अहिल्या के आदेश से कर्मचारियों ने विधवा को इसी मर्म का अनुमति-पत्र लिख भेजा। विदेशी लोग, या हमारे देश के भी बहुतेरे लोग समझा करते हैं कि अशिक्षित या दुर्भाग्यकारी से अन्धे हिन्दू-राजाओं के अधिकार में प्रजा को सुख-शान्ति नहीं मिलती थी। ऐसे लोगों को अहिल्या जैसी हिन्दू महारानी के शासनकाल की आलोचना करनी चाहिए।

अहिल्या राजकार्य में जैसे एक ओर बड़ी मधुरता दिखाती थीं, आवश्यक होने पर, दूसरी ओर, उसी प्रकार वह कठोरता से भी काम ले सकती थीं। अपने राज्य में चोर डाकुओं [illegible] दबाने में उनको बड़ी दृढ़ नीति और दृढ़ विचार के [illegible]

धर्म-कार्य के सिवाय किसी दूसरे काम में नहीं लगाया जाता था। जिस काम के लिए जितना धन लगाना निश्चित हो जाता, उससे अधिक धन उसमें नहीं लग सकता था। अतीव दानशीलता के होते हुए भी राजकाज के लिए कभी नियमित धन से अधिक लेने की ज़रूरत नहीं होती थी। ऐसे ही ऐसे शुभकर्मों के लिए उसका शासनकाल प्रत्येक विषय में कल्याणपूर्ण हो गया था। स्वदेशी, विदेशी, आर्त्त और निराश्रय, सभी के लिए उसके सदाव्रत का द्वार रात दिन खुला रहता था। सन् १७८४ ई० के दारुण दुर्भिक्ष से जब उत्तर-भारत के असंख्य लोग मरने लगे, तो अहिल्या ने मुट्ठी खोलकर दान का भंडार जारी कर दिया था। भारतवर्ष में विरला ही कोई तीर्थस्थान होगा जहां अहिल्याबाई की कीर्ति अब तक न देख पड़ती होगी। गया और काशी के दोनों मन्दिर उसीके धन से बने और संस्कृत हुए थे। जगन्नाथ जी को जाने के लिए उसने चौड़ी सड़क बनवायी। अब भी टूटी फूटी दशा में सहस्रों यात्रियों का दुःख दूर कर रही है। हिमालय पर्वत पर केदारनाथ का तीर्थ है। वहां १००० फुट ऊपर—जहां किसी मनुष्य के रहने की जगह नहीं है—अहिल्या ने तीर्थ-यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला और कुंड बनवा दिये हैं

इतना ही सुनकर प्रसन्न हो गयी। वह बोली—"कुछ भी हो, पर वह सुन्दरी तो नहीं है!" हाय, संसार की अनेक रमणी ही रूप यौवन के अभिमान से अपनी आत्मा को इसी भांति धोखा देकर सुख माना करती हैं।

अहिल्या धर्मात्मा थी, पर धर्मान्ध न थी। हिन्दू, मुसलमान, दोनों सम्प्रदाय के लोग उसके राज्य में समान सुख शान्ति से बसते थे। उसकी जीवनी से एक शिक्षा यह भी मिलती है कि मानसिक शक्ति अकेले पुरुष ही को नहीं होती। नारी होकर भी उसके जैसे नियम और सुप्रबन्ध से अपना काम किया, वह किस पुरुष के लिए बड़ाई की बात नहीं होगी? अवसर दिये जाने पर नारी भी पुरुषों में पाये जाने वाले सद्गुणों का परिचय दे सकती है, अहिल्या के चरित्र से इसका प्रमाण मिलता है। सो, इस देश की रमणी-शक्ति सागर के गर्भ में छिपे हुए रत्न की नाई प्रभाहीन और निरर्थक पड़ी है।

रानी भवानी

जिन परम पावनी नारी-रत्नों का नाम स्मरण करतेही भारतवासी अपना तन मन पवित्र समझने लगते हैं, उन्हीं प्रातः स्मरणीया महिलाओं में से रानी भवानी भी एक हैं। यह रत्नगर्भा बङ्गालमें राजशाही ज़िले के 'छातिम' ग्राम-निवासी आत्माराम चौधरी नाम के एक ब्राह्मण ज़मींदार की इकलौती बेटी थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। उस समय की रीति अनुसार आठवें ही वर्ष में इसका विवाह नाटौर के महाराज रामजीवन के पुत्र रामकान्त के साथ हुआ।

सन् १७३० ई० में रामजीवन के परलोकवास होने पर रामकान्त सिंहासन पर बैठा। रामकान्त को महाराज रामजीवन ने गोद लिया था। यह काम उनके भतीजों को अच्छा न लगा और रामजीवन के परलोक पधारने उपरान्त उन्होंने मुर्शिदाबाद के नव्वाब के पास रामकान्त का गोद लिया जाना झूठा बतलाकर सारी सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु रामकान्त अपनी बुद्धिमती पत्नी भवानी के साथ तुरन्त

ही ऊपर लेना पड़ा, और वह प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगी। परन्तु इस समय वह नाटौर से कुछ दूर गंगा तट पर एक भवन बनाकर रहा करती थी।

उसकी दिन-चर्या इस प्रकार थी—चार घंटे रात रहते ही वह उठ कर भजन करती। आधा घंटा रात रहने पर वह बाग में फूल चुनती और सूर्य निकलते निकलते स्नान कर लेती थी। वहाँ गंगा के किनारे बैठकर शिव पूजन करती और पूजा से छुट्टी पाने पर वह प्रत्येक देवालय में पुष्प चढ़ाती। इसके उपरान्त वह दुखियों कङ्गालों को भोजन कराकर आप भोजन करती। इसके बाद राज-सभा में आकर परदे की आड़ में बैठकर राज-कार्य्य करती थी। तीसरे पहर पुराण सुनती। सन्ध्या समय गंगातट पर जाकर दीपक जला कर घर लौटती और फिर सभा में आकर दरबार का काम-काज करती। डेढ़ पहर रात बीत जाती तब वह सोती थी। भोजन दिन रात में एक ही बार करती थी, सो भी बहुत ही सादा।

उस समय सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद का नव्वाब था। वह बड़ा चंचल और निकृष्ट स्वभाव का मनुष्य था। राजकुमारी तारा के रूप गुण की बड़ाई सुन कर उसने कई दूतों

से भरी हुई १७०० नावें आयी थीं, और जब तक वह जीवित रहीं, नाटौर से हर साल १००० नावें बराबर काशी को आती थीं। उस समय रेल नहीं थी, नावों ही पर बैठकर बंगाली लोग इस देश को आया करते थे। रानी भवानी काशी में प्रति दिन २५ मन चावल और ८ मन चना बांटती थीं, और कुमारी कन्याओं, सुहागिन स्त्रियों तथा दरिद्रों और अनाथों को भोजन कराकर दक्षिणा देती थीं। इस भांति नित्य लगभग २०० मनुष्य रानी का अन्न खाते थे। काशी की पंचकोशी प्रदक्षिणा के लिए रानी भवानी ही ने सुन्दरमार्ग बनवाया है, और मार्ग पर यात्रियों के सुख के लिए वृक्ष लगवाये और कुएं खुदवा दिये हैं।

रानी भवानी राज-काज में बहुत ही चतुर थीं। प्रजा के लिए तो वह माता के समान थीं। उसने गरीबों की चिकित्सा के लिए वैद्यों को नौकर रखा था। दीन दरिद्रों के लिए धर्म्मशालाएं बनवायी थीं।

अकाल के समय उसने दीन दुखियों को भोजन दे देकर अपना भंडार खाली कर दिया था। रानी भवानी बड़ी कोमल हृदयवाली थी। परन्तु समय पड़ने पर वह बड़ी बुद्धिमानी से

विनाशवान शरीर इस समय देख नहीं पड़ता, तथापि उसकी विमल कीर्ति अब तक चारों ओर गूंजती सी मालूम होती है। इस धर्मात्मा बंगालिन रानी का चरित अब तक भारतवासी बड़ी भक्ति से कीर्तन करते हैं। कौन मनुष्य इस देश में ऐसा होगा जिसका हृदय आज भी रानी भवानी का पवित्र नाम सुनते ही भक्तिभाव से नहीं भर जाता?

देखिए, रानी भवानी को मरे हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए, पर वह इस बात का अमर प्रमाण छोड़ गयी है कि भारत-महिला अवसर पड़ने पर बड़ी बुद्धिमानी से राजकाज जैसे भारी कामों को भी भली प्रकार संभाल सकती और प्रजा के सुख के लिए अपना तन मन धन अर्पित कर सकती है। रानी भवानी का स्वभाव इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई से बिलकुल मिलता था।

तक उसके विशाल हृदय पर अधिकार जमा चुकी थीं। इतने पर भी उसकी रूप-लालसा या सौन्दर्य की तृष्णा नहीं मिटी। उसने सुना कि चित्तौर के अधीश्वर लक्ष्मणसिंह के चाचा भीमसिंह की पत्नी पद्मिनी या पद्मावती रमणी-समाज में एक सामान है। जिस दिन यह बात उसके कानों तक पहुँची, उसी दिन से उसके अन्तःकरण में विष के समान ज्वाला धधकने लगी। अन्त में, जैसे बने तैसे ही पद्मिनी की रूप-राशि का उपभोग करने की प्रतिज्ञा उसने कर ली। होते होते विषय कामना से उसका शरीर दुबला पड़ गया, रंग पीला होने लगा। राज काज में चित्त न लगता, वह सदा अनमना बना रहता—सदा घबराया हुआ सा जान पड़ता। परन्तु अनेक कारणों से बहुत दिनों तक उसने अपनी व्याधि का अपना भेद किसी से खोलकर नहीं कहा। बड़े विश्वासपात्र सुयोग्य वज़ीर को भी इस बात का राई भर पता न लगा। पर जब और सहा न गया—जब हृदय में अग्नि की ज्वाला से वह झुलसा उठा—तब एक दिन उसने वज़ीर को एकान्त में अपने पास बुलाकर पद्मावती पर अपने अनुराग की बात सब से पहिले खोलकर कही। उसने कहा कि अगर मेरे मन की बात [illegible] राजपूत राजाओं को मालूम हो जायगी तो सभी हमसे बहुत चिढ़ जायेंगे। परन्तु अनेक [illegible], अनेक

ताया—उसकी उत्कट इच्छा तो यही थी कि पद्मिनी को अपने महल में ले जाना। सेना जाय, धन जाय, साम्राज्य भी चाहे छूट जाय, यह पर्वा मानने लगा था ! सो वह पग पग करके धीरे धीरे आगे ही बढ़ता गया। अन्त में चित्तौर के द्वारदेश पर आ पहुंचा। इतना भारी अपमान राजपूतों को पहिले कभी नहीं मिला था। यही सब से पहिले पहिल मुसलमान हिन्दू सूर्य के प्रतिष्ठित नगर के द्वार पर पहुंचे थे। लज्जा से—अपमान से—क्रोध से राजपूत बावले ऐसे हो गये, बहुत दिनों तक चेष्टा करने पर भी बादशाह चित्तौर पर अधिकार न जमा सका। तब उसने वज़ीर की सलाह से चतुराई से काम लिया। उसने सन्धि का प्रस्ताव किया। भीमसिंह सन्धि करने को राजी हो गया। बादशाह ने भीमसिंह का पाहुन बनने की इच्छा प्रकट की। इस बात से भीमसिंह बहुत प्रसन्न हो गया। कुछ विश्वासी नौकरों के साथ बादशाह चित्तौर में घुसा। राजपूतों ने बड़े समारोह से सभा करके बड़े सम्मान से बादशाह की अगवानी की! बादशाह भी उनके बर्त्ताव से प्रीति दिखाने लगा और अन्त में मानों कोई बड़ी बात न थी, इस प्रकार वह भीमसिंह से कहने लगा—"महाराज ! मैंने सुना है कि आपकी महिषी बड़ी रूपवती हैं ! क्या मैं उनको एक बार नहीं देख सकता ?" "आपकी पत्नी बड़ी रूपवती है" इस बात को सुन

पर पद्मावती भी बड़ी बुद्धिमती थी। इस महा विपत्ति के समय में उसने अपने भाई बादल के पास राखी भेज दी। राखी भेजने की रीति राजपूतों में बराबर से चलती आयी है। जिसके पास राखी भेजी जाती है, वह भेजनेवाली की लाज अपने प्राण देकर भी रख लेता है। बादल की उम्र बहुत ही थोड़ी थी। लोग कहते हैं कि इस समय वह कुल १२ वर्ष ही का था। पद्मिनी भी उससे बहुत बड़ी नहीं थी। कुछ भी हो, बादल एक अद्वितीय वीर माना जाता था। राखी भेजने के समय बादल अपने पिता का राज्य बढ़ाने के लिए पड़ोसवाले राजाओं से घनघोर युद्ध में लगा था। बहिन की विपत्ति की बात सुन उससे निश्चिन्त न रहा गया। सब शत्रुओं के साथ झटपट ज्यों त्यों सन्धि करके वह चित्तौर पहुंचा, और पिता को अपनी सेना के साथ पीछे से आने के लिये कह गया। बादल पद्मिनी से बड़ी प्रीति रखता था। बचपन में दोनों एक साथ खेलते थे। तभी से दोनों की प्रीति अटूट हो गयी थी। सूरत शक्ल में भी बादल पद्मिनी के बराबर ही था। पद्मिनी के पिता गोरा ने चित्तौर आकर सभी कुछ गड़बड़ पाया। उसे देख चित्तौरवालों का ढाढ़स बंधा। उसने सबको दिलासा देकर कहा, प्राण तक देकर भीमसिंह को बचा लाऊंगा।

[२]

एक दिन, दिन भर के कठोर राज्य-चिन्ता के उपरान्त, बादशाह अलाउद्दीन अपने विलास-भवन में पद्मिनी को पुर लाने की कोई गहरी चाल सोचने में लगा है, ऐसे समय द्वारपाल ने आकर कहा कि राजपूत राजा के देश से दूत आया है। बादशाह ने आग्रह से कहा, "उसे अभी मेरे पास ले आओ।" उसके आने पर बादशाह ने बहुत ही घबराकर उससे समाचार कहने के लिए कहा। दूत जो समाचार लाया था, उससे बादशाह तो मारे आनन्द के मानो उछल पड़ा। उसके प्रेम में जले हुए कलेजे पर मानो संजीवन औषधि के छींटे पड़ गये। पद्मिनी इतने दिन पीछे बादशाह के हाथों में आत्म-समर्पण कर देने को राजी हो गयी है, पर उसकी एक प्रार्थना है—उसके पति का छुटकारा। समाचार सुन कर बादशाह ने दूत को बहुत सा पुरस्कार देकर तुरन्त चित्तौर लौट जाने के लिए कहा और बार बार समझा दिया कि "देखो, राह में कहीं देर न होने पावे।"

वह राजपूत कौन था? वही गोरा—पद्मिनी का पिता। उसने अनेक पुरस्कार पाकर बादशाह को बार बार आशीष

देकर पूछा, "कितने लोगों के साथ रानी को यहां ले आऊं ? रानी की दासियों की संख्या बहुत भारी है; वह राजा की बेटी है, राजा ही की रानी है; इसके सिवाय उससे अन्तिम भेंट विदायी के लिए भी रजवाड़े की बड़े बड़े घरों की बहू बेटियां उसके संग दिल्ली तक आना चाहती हैं। बादशाह सलामत क्या उन सबको अपनी अमलदारी में आने की आज्ञा देंगे ?"

"आने की आज्ञा दूंगा ? भला, यह कैसी बात ? जो रजवाड़े की सारी सुन्दरियां मेरे महल में आ जावें तो इससे बढ़कर दूसरी खुशी की बात क्या हो सकती है ! यह तो मानो मेरे लिए ऊपरी आमदनी हो गयी। नेकी और पूछ पूछ ! पद्मिनी आवेंगी, अपने संग वह जितनी भीड़भाड़ लाना चाहें, लेती आवें। दिल्ली की बेगम को जिस ठाठ से आना चाहिए, वह उसी तरह यहां आवें। मैं हुक्म देता हूँ, वह जहाँ जहाँ ठहरेंगी, वहीं पर मेरे कारिन्दे उनकी पूरी इज्जत करेंगे।"

"जहांपनाह ! मुझको डर है कि महारानी सिर्फ़ थोड़ी सी औरतों के साथ आ रही हैं, इन्हें देख राह में बदनाश लोग उन पर कुछ जुल्म न करने लगें। सो हमारी कुछ सेना भी उनकी

निर्मल है, बादल का कहीं नाम भी नहीं है। धीमी धीमी बयार चल रही है। गरमी बहुत नहीं है, जाड़ा भी बहुत नहीं है। नगर भर में रोशनी हो रही है। चारो ओर नक्कारे बज रहे हैं। नियत स्थानों पर मिष्ठान की सामग्रियों की ढेरें लग रही हैं। बीच बीच में तवाइफों के नाच हो रहे हैं। बड़े बड़े कलावत जहां तहां राग रागिनियां अलाप कर थके हारे राहियों के चित्त ठंढे कर रहे हैं। इतने में खबर मिली—बादशाह की प्राणेश्वरी सात सौ राजपूत सहेलियों के साथ दिल्ली के द्वार पर आ गयी। एक एक सहेली का एक एक डोला, एक एक डोले के साथ छः छः कहार या डोला उठानेवाले भी आये हैं। बादशाह ने अगवानी के लिए बड़े बड़े मनसबदारों को भेज दिया। बादशाही बालाखाने के पासवाले मैदान में बहुतेरे महामूल्य तम्बू डेरे सजाये गये थे। राजपूतनियों को बड़े आवभगत से उन्हीं में ठहरने की आज्ञा मिली। बे रोक टोक लगभग ५००० मनुष्य बादशाह के बालाखाना के पास बटुर गये। डोले ढोनेवाले लगभग सभी उच्चकुल के राजपूत थे, वेश बदल, कहार बन, दिल्ली में आ घुसे थे।

गोरा बादशाह के पास स्नान लेने को गया और पहिली कही सुनी के अनुसार भीमसिंह को छोड़ देने के लिए प्रार्थना

करने लगा। बादशाह ने कहा—"वह नहीं छुट सकता।" गोरा का मुखड़ा उदास पड़ गया। पर उसने मन की बात सावधानी से छिपा कर शान्तभाव से कहा, "पद्मिनी आपके साथ विवाह करने के लिए राजी है, पर वह इतना ही अर्ज़ करती है कि इसके पहिले एक बार वह जन्म भर के लिए पति से मिल ले। आप मुल्ला को बुलवा कर विवाह का बन्दोबस्त कीजिए। पद्मिनी को कोई उज्र नहीं है।"

"पद्मिनी को यह कैसी सनक सवार हो गयी! अच्छा, उसकी अर्ज़ी मंजूर हुई। पर ऐसी हालत में भीमसिंह को छोड़ देना लाजिम है या नहीं, इस बात पर भी गौर करना पड़ेगा।" बादशाह ने ऐसा कह कर एक नौकर को बुला कर कहा, "अरे, राजा भीमसिंह को यहां लिया ला।" बात की बात में जंजीरों से बंधा हुआ भीमसिंह सम्राट के सामने लाया गया। बादशाह ने अपना मतलब पूरा कर लिया था, सो राजा के साथ और निठुराई करने की आवश्यकता नहीं थी। उसने आज्ञा दी, इसके पैरों के जंजीर उतार लो। नौकरों ने जंजीर उतार ली।"

"मेरे ऊपर इतने अनुग्रह का कारण मैं पहले ही से जानता हूं। मैंने गारद ही में उसके समाचार सुन लिये हैं। अब मुझ

पर क्या हुक्म होता है !" यों कह कर भीमसरूप भीमसिंह ने अपने भीम नेत्रों से गोरे की ओर देखा। पहले, मानो उसे पहिचाना ही नहीं। पर ज्यों ही उसके जंजीर उतार लिये गये, वह दौड़ कर गोरा की ओर झपटा, और जोर से उसके गले से लपट गया। चाहता था कि गला घोंट कर ही उसके प्राण निकाल ले।

"नीच ! पापी ! क्षत्रियकुल का कलङ्क ! मेरे विशुद्धकुल पर तूने कालिख लेप दिया ! सिसोदिया राजकुल की वधु को तूने यवन की सेज पर सुलाया। देख, अब तुझ को इसका यथोचित पुरस्कार देता हूँ"—यों कह वह बड़े जोर से गोरा को मारने के लिए उद्यत हुआ।

गोरा के शरीर में भी बहुत बल था। उसने भीमसिंह को पेंच से बचा कर कहा—"भीमसिंह ! ठहर जाओ। जान लो कि जैसे तुम राजपूत हो, वैसा ही मैं भी राजपूत हूँ।"

मुसल्मानों ने समझा [illegible]
है। [illegible]
[illegible] दम तोड़ दिया।

इस घटना के बाद भीमसिंह पद्मिनी से अन्तिम भेंट के लिए भेजा गया। अलाउद्दीन ने संग जाना चाहा और तम्बू के भीतर घुसने की भी चेष्टा की। गोरा ने कहा, "सुलतान, पद्मिनी निराले ही में मिलना चाहती है।" निदान बादशाह बेबस होकर तम्बू से बाहर हो गया। पर कितनी देर हो गयी, पति पत्नी की बातों का अन्त ही नहीं होता। बादशाह के मन में द्वेष होने लगा। उससे और न रहा गया। वह जबरदस्ती तम्बू में घुस गया। जो कुछ देखा, उससे उसको बड़ा अचरज होने लगा। यह क्या! पद्मिनी कहां? यहां तो भीमसिंह किसी भीमवल विशाल शरीर परन्तु थोड़ी ही उम्र वाले राजपूत से बातें कर रहा है! उसका सारा शरीर जिरह बखतर से ढंका हुआ है! "बड़ा धोखा दिया! अरे देखो, राजपूतों ने मेरा खून कर डाला!" यों कह कर बादशाह चिल्ला उठा। उसकी आवाज सुनते ही उसके रक्षक सिपाही भीतर घुस आये। पहिले कहा हुआ वीर और कोई नहीं, स्वयं बादल था। बादल ने सिंह की नाईं झपट कर उस पर आक्रमण किया। बादशाह को बड़ी चोट आयी। यदि एक प्रधान सेनापति बादशाह और बादल दोनों के बीच में आकर अपने प्राण न दे देता तो इसी क्षण दिल्ली की शाही गद्दी खाली हो जाती। इसी तरह जब पांच मुसलमान अपने प्राण दे चुके, तब बड़ी कठिनाई से

बादशाह तम्बू के बाहर पहुँचाया जा सका। बादशाह अब तक अचेत था। अभी तक गोरा का सारा प्रबन्ध सम्पूर्ण नहीं हो सका था। यह बड़ा उद्योगी पुरुष था। बात की बात में ७०० डोलों में छिपे हुए वीर राजपूत सिपाही, तथा डोले उठाने वाले ४२०० सिपाही—कुल ५००० राजपूत वीर हथियार उठाकर लड़ने लगे। ये लोग लड़ते लड़ते अपने को बचाते हुए भीषण शत्रुपुरी से निकल कर चित्तौर की ओर "कूइक मार्च" कर गये। नगर के भीतर तो वह मानों शत्रु के जाल के भीतर फँसे ही थे। बाहर भी उनका कुशल न था। परन्तु लड़ते मारते वे सबके सब मुसलमानी राज्य-सीमा के बाहर निकल ही गये।

उधर चित्तौर में रानी पद्मावती बड़ी भारी चिता सजाये अशुभ समाचार सुनते ही जल मरने के लिए तैयार बैठी थी। उसने जीते जी अपना शरीर मुसलमानों के हाथ न जाने देने का मनसूबा कर लिया था। परन्तु वीर राजपूतों के दुर्दमनीय साहस और पद्मावती के निष्कपट पातिव्रत ने उसका धर्म बचा लिया।

लीलावती

भास्कराचार्य नाम के एक प्रसिद्ध गणितशास्त्र के पंडित महाराष्ट्र देश के विदर्भ नगर में रहते थे। ई० सन् ११९५ के लगभग उनका समय या जन्मकाल बतलाया जाता है। इन्हीं पंडित भास्कराचार्य की कन्या का नाम लीलावती था। लीलावती के नाम से और भी दो रमणियों का पता लगता है। उद्भनाचार्य की कन्या भी लीलावती कहलाती थी। बहुतेरे लोग शंका करते हैं कि हो न हो ये दोनों लीलावती एक ही रही होंगी। एक तीसरी लीलावती की भी बात सुनी जाती है। उससे कोई कुकर्म हो गया था जिसके लिए उसने ढेरों धनक दान करके अपने कुकर्म का प्रायश्चित्त किया था। परन्तु इस रमणी से हमारा मतलब नहीं है। हमको यहां गणितशास्त्र में यश पानेवाली लीलावती की कथा सुनानी है।

किसी किसी की सम्मति है कि लीलावती भास्कर पंडित की कन्या नहीं, पत्नी थी परन्तु इस बात का भी कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। लीलावती नामक ग्रन्थ में "रूपे वाले

लीलावती

भास्कराचार्य नाम के एक प्रसिद्ध गणितशास्त्र के पंडित महाराष्ट्र देश के विदर्भ नगर में रहते थे। ई० सन् १११५ के लगभग उनका समय या जन्मकाल बतलाया जाता है। इन्हीं पंडित भास्कराचार्य की कन्या का नाम लीलावती था। लीलावती के नाम से और भी दो रमणियों का पता लगता है। उदयनाचार्य की कन्या भी लीलावती कहलाती थी। बहुतेरे लोग शंका करते हैं कि हो न हो ये दोनों लीलावती एक ही रही होंगी। एक तीसरी लीलावती की भी बात सुनी जाती है। उससे कोई कुकर्म हो गया था जिसके लिए उसने ढेरों नमक दान करके अपने कुकर्म का प्रायश्चित्त किया था। परन्तु इस रमणी से हमारा मतलब नहीं है। हमको यहां गणितशास्त्र में यश पानेवाली लीलावती की कथा सुनानी है।

किसी किसी की सम्मति है कि लीलावती भास्कर पंडित की कन्या नहीं, पत्नी थी परन्तु इस बात का भी कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। लीलावती नामक ग्रन्थ में "अये बाले

लीलावती

भास्कराचार्य नाम के एक प्रसिद्ध गणितशास्त्र के पंडित महाराष्ट्र देश के विदर्भ नगर में रहते थे। ई० सन् १११५ के लगभग उनका समय या जन्मकाल बतलाया जाता है। इन्हीं पंडित भास्कराचार्य की कन्या का नाम लीलावती था। लीलावती के नाम से और भी दो रमणियों का पता लगता है। उदयनाचार्य की कन्या भी लीलावती कहलाती थी। बहुतेरे लोग शंका करते हैं कि हो न हो ये दोनों लीलावती एक ही रही होंगी। एक तीसरी लीलावती की भी बात सुनी जाती है। उससे कोई कुकर्म हो गया था जिसके लिए उसने ढेरों कनक दान करके अपने कुकर्म का प्रायश्चित्त किया था। परन्तु इस रमणी से हमारा मतलब नहीं है। हमको यहां गणितशास्त्र में यश पानेवाली लीलावती की कथा सुनानी है।

किसी किसी की सम्मति है कि लीलावती भास्कर पंडित की कन्या नहीं, पत्नी थी। परन्तु इस बात का भी कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता। लीलावती नामक ग्रन्थ में "अये बाले

लीलावति !" श्रादि पाठ से समझा जाता है कि यह पंडित जी की कन्या ही रही होगी। लीलावती के सिवाय भास्कराचार्य के कोई और सन्तति थी या नहीं, इसका भी कुछ पता नहीं लगता। परन्तु भास्कर को अपनी कन्या से कैसा स्नेह था, इसी बात से जाना जा सकता है कि उन्होंने अपनी एक गणित की पुस्तक का नाम भी लीलावती रक्खा था। लीलावती के पितामह का नाम महेश्वर था। उसका जन्म अति प्राचीन शाण्डिल्य मुनि के गोत्र में हुआ था।

भास्कर पंडित बहुत बड़े ज्योतिषी भी थे। उन्होंने गणना से जान लिया था कि उनकी प्यारी बेटी विवाह के थोड़े ही काल आगे विधवा हो जावेगी। इस लिए पिता को बड़ी दुश्चिन्ता सताया करती थी। वह कन्या की इस भावी विपत्ति को रोकने के लिए अनेक उपाय सोचा करते। अन्त में उनको एक अच्छा उपाय सूझ पड़ा। उन्होंने कहा कि इसका विवाह ऐसे लग्न में करेंगे जिसमें कभी कोई विधवा हो ही नहीं सकती। निदान लीलावती का विवाह भी ऐसे ही लग्न में निश्चित किया गया। सो, लग्न का निर्णय करने के लिए किसी पात्र में जल भर कर उसके ऊपर एक नन्हा सा छेदवाला कटोरा रक्खा गया। उस छेद में से जल भरते भरते जब

कटोरा डूब जाये, तभी विवाह की लग्न आने की सूचना होगी। सब लोग घर कन्या को लेकर उस शुभ लग्न की प्रतीक्षा में बैठे रहे। परन्तु "विधि का लिखा को मेटनहारा!" लीलावती का विधवा होना ही यदि दैवी इच्छा थी, तो उसे इससे कौन रोक सकता था! दैव का कार्य देखिए। लीलावती, खेल खिलवाड़ से हो, चाहे चञ्चलता के कारण ही हो, निहुर कर देखने लगी कि कटोरे में कैसे बूंद बूंद जल भर रहा है। इतने ही में अकस्मात् उसके केशों में गूंथी हुई मोती की लड़ी में से एक नन्हा सा मोती टूटकर कटोरे के भीतर जा रहा और ठीक उसके बीचवाले छेद पर जम गया। इतने ही से छेद में होकर जल का भरना रुक गया। जिन ज्योतिषियों ने इस भरना और उससे लग्न निर्णय करने का कार्य उठाया था, उनको यह देख आश्चर्य हुआ कि देर तो बहुत हो गयी, पर कटोरा नहीं भरा। अन्त में उसका असली कारण भी मालूम हो गया। जान पड़ा कि कटोरे के भीतर छेद के ऊपर एक मुक्ता जमा हुआ है। सबने जान लिया कि लग्नकाल बीत गया। पर अब क्या हो सकता था! हरि इच्छा जान लीलावती का विवाह कर दिया गया। भास्कराचार्य की मनोकामना निष्फल हुई।

विवाह के थोड़े ही दिनों बाद लीलावती का पति मर गया। तब भास्कराचार्य ने सोचा कि इसको ऐसी विद्या

"सिद्धान्त-शिरोमणि" में भास्कराचार्य ठौर ठौर पर सूत्र लिख कर ही चुप रह गये हैं, कहीं कहीं विषय तक का निर्देश नहीं किया है। क्यों ऐसा किया, इस बात को बतलाने के लिए वह कह गये हैं कि सूक्ष्म-दर्शी मनुष्य इसका कारण अनायास ही समझ सकेंगे। परन्तु असल में ये सब सूक्ष्म-बुद्धियों के लिये भी बहुत ही दुर्बोध्य हैं। और जिनको उन्होंने जड़-बुद्धिवालों के उपकारार्थ लिखा है, स्थूल-बुद्धिवालों की तो कुछ बात ही नहीं—तीक्ष्ण-मतिवालों को भी उनके समझने के लिए बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। लीलावती ने इन सब विषयों को बहुत अच्छी तरह सीख लिया था। सो उसकी तीखी पैनी बुद्धि और स्वभाव-सिद्ध प्रतिभा न जाने कैसी रही होगी, इसी बात को सोच कर बड़े बड़े बुद्धिमान चकराया करते हैं। उस प्रशंसनीय पुस्तक के अनेक संकेतों को योरोप के पंडितों ने अपना कर अपने देश की गणित-विद्या का बहुत उपकार किया है, और इतने ही के लिए वे अपने देश का धन्यवाद पा चुके हैं।

लीलावती जैसी गुणवती थी, वैसी ही विद्यावती भी थी। क्योंकि उसका पिता उसे "मतिमती" कहता था। वह असाधारण बुद्धिमती थी। वह पेड़ के नीचे बैठ, उस पेड़ के फल, पत्र, शाखा, प्रशाखाओं की सहज ही में गिनती कर लेती थी।

पद्मिनी

वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि है। आज बंगाल का शुभ दिन है। मोगलों की गुलामी से अपने देश को छुड़ाने के लिए बंगाल का नेता प्रतापादित्य दिल्ली के सम्राट अकबर शाह से स्वतन्त्र हो गया है। आज उसी यशेश्वर प्रतापादित्य का राज्याभिषेक है। बंगाल के सौभाग्य का स्वप्न आज सफल होने लगा है। यशोहर में प्रतापादित्य की राजधानी थी। वर्तमान जैसोर से यह यशोहर अलग था। आज यशोहर धाम आनन्द का नगर बन रहा है। हाट, बाट, जिधर देखो, आनन्द उमड़ रहा है। जो जन्म से दुखिया है, आज उनके भी मुखड़े पर आनन्द की छटा देख पड़ती है। नागरिकगण हृदय के उल्लास से इधर उधर घूम रहे हैं, फिर रहे हैं, [illegible] रहे हैं। दुकानें आज बड़े ठाटबाट से सजी देख पड़ती हैं। सड़कों के दोनों किनारे पुष्प लताओं की मालाओं से सुशोभित किये गये हैं। हाथ हाथ में [illegible] [illegible] रहे हैं। [illegible] पर [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible]

ध्वनि आ रही है। लड़के लड़कियां चमकीले भड़कीले नये नये वस्त्रों से भूषित होकर बड़े प्रेम से उत्सवक्षेत्र में विचरण कर रही हैं। गृहस्थों के द्वार द्वार पर मङ्गलघट, केले के खम्भे, आमके पल्लव रक्खे हैं। पुरनारियां गृहों की छतों पर से बीच बीच में, झुंड बांध बांध कर, आनन्दसूचक शङ्खध्वनि कर रही हैं। देवालयों में गम्भीर रव से शङ्ख घड़ियाल बज रहे हैं। गृहस्थों की दैनिक देवपूजा की भी आज धूम है। इसी भांति चारो ओर आनन्दमय, उत्सवमय हो रहा है। आनन्द के बाजार में सभी लोग आनन्द लूट रहे हैं।

धूमधाट के दुर्ग की शोभा और भी मनोहर, और भी विचित्र, और भी प्रीतिकर है। दुर्ग की ऊंची चोटी पर पत-पत शब्द से विजयपताका उड़ रही है। प्रातःकाल ही से सैनिकगण पांति लगा लगा कर सजधज कर खड़े हैं। विस्तृत मैदान में उनकी दल बादल सी श्रेणियां डटी हुई हैं। अपूर्व वीररस से परिपूरित हो उनके बाजे बज रहे हैं। ठहर ठहर कर आनन्दसूचक तोपें भी दागी जा रही हैं। सैनिकगण यं वेश से समराङ्गण में उपस्थित हैं। उनके दो दल हो गये हैं। दोनों दलोंमें दिखावटी समर-कौतुक हो रहा है। दर्शक अपने

आपे को विस्मृत, अपने सौभाग्य को उच्चतम अवस्था समझ, बार बार "हरि ! हरि !" कह कर चिल्ला रहे हैं। बीच बीच में "जय ! महाराज प्रतापादित्य की जय !"—की ध्वनि से आकाश कांप उठता है।

बंगालियों के जीवन के इस पुण्यमय मुहूर्त्त में, बैशाखी पूर्णिमा की उस शुभतिथिमें—पुण्यश्लोक प्रतापादित्य ने आत्म-बल से बङ्गाल का सिंहासन अधिकृत किया है। फिर हिन्दू राजा का बङ्गाल में राज्याभिषेक है। यह क्रिया बड़े समारोह से, परन्तु शास्त्रीय विधान-अनुसार सम्पन्न हुई। महाराज रत्नजड़ित स्वर्ण-सिंहासन पर, बायें ओर अपनी सहधर्मिणी पद्मिनी को बैठा कर, वेदज्ञ ब्राह्मणों से मन्त्रपूत होकर, राज-राजेश्वर के पद पर बैठे। "जय, जय" के शब्द से यह विशाल सभामण्डप गूंजने लगा।

दान देने में प्रतापादित्य उस दिन कल्पवृक्ष बन गये। अर्थी और अभ्यागतों ने उस दिन मनमाना धन बटोरा। रानी किसी ब्राह्मण को एक मोहर देने लगीं। परन्तु हाथ से छुटकर वह मोहर फिर सोने के घड़े में गिर पड़ा। रानी फिर एक दूसरा मोहर निकाल कर ब्राह्मण को देने लगीं। प्रताप ने इस बात

को देख ली। पूछा,-"रानी! ब्राह्मण को पहिले जो मोहर दे रही थीं, क्या यह वही मोहर है?"

रानी को मानो चेत हो आया। अपराधिनी की भांति बोली "नहीं, महाराज! मैं ठीक नहीं कह सकती, यह वही मोहर है या दूसरा।"

प्रताप ने तुरत उत्तर दिया, "तब मन में और कुछ आगा पीछा किये बिना सुवर्णकलस के साथ ये सब मोहर ब्राह्मण को दे दो।"

प्रतापका आदेश मान लिया गया। सभा में फिर "जय जय" की ध्वनि होने लगी।

इस घटना से एक ब्राह्मण के मन में कुछ कौतुहल हो आया। उसने राजा रानी के मन की शक्ति की परीक्षा लेने का विचार किया। राजा रानी जहां बैठ कर जनसाधारण के हृदय की कृतज्ञता और अन्तरके आशीर्वाद ले रहे थे, ब्राह्मण कुछ सकुचाता हुआ धीरे धीरे सिंहासन के सामने जाकर खड़ा हो गया। प्रताप ने पूछा, "क्या चाहिए?"

ब्राह्मण बोला, "मेरी प्रार्थना कुछ अनोखे प्रकार की है— पर वह आपके लिए न असम्भव है, न असाध्य है।"

प्रताप ने धीरज से पूछा, "कहिए, क्या है?"

ब्राह्मण चुपचाप धरती पर दृष्टि टेक कर खड़ा रहा।

प्रताप ने दृढ़ता से कहा—"मेरे अपने धर्म और सत्य के सिवाय आप जो कुछ मांगेंगे, आपको मिल जायगा।"

इस बार ब्राह्मण को कुछ ढाढ़स हुआ। उसने एक बार सभा में चारों ओर नेत्र उठाकर देखा। फिर एक तीव्र दृष्टि से रानी की ओर देखा और कांपते हुए स्वर से बोला, "महाराज! मेरी प्रार्थना आप की महिषी को पाने के लिए है।"

उस विराट सभा में सन्नाटा छा गया। सब लोग मन ही मन घबरा उठे। उदास मुख से भयभीत, चकित होकर, सब आपस में मुंह देखा देखी करने लगे। कोई कोई मन ही मन इष्ट देवता का नाम जपने लगे

प्रार्थी ब्राह्मण रत्नसिंहासन की ओर देखता हुआ खड़ा है। प्रतापादित्य ने एक बार महिषी की ओर देखा। ओर से एक लम्बी साँस खींची। फिर बोले—"रानी! आज परीक्षा का दिन है। भगवती यशोहरेश्वरी हम लोगों की परीक्षा ले रही हैं। साध्वि! सतीत्व का माहात्म्य दिखाओ,—पति को सत्य के बन्धन से मुक्त करो।"

रानी के मुख से कुछ उत्तर न निकला—वह डबडबाते हुए नेत्रों से पति को निहारती रही। प्रतापादित्य ने सहधर्मिणी के मन की बात समझ ली। राजा प्रेम-परिप्लुत गद्गद कण्ठ से बोले "प्रिये! इसे असम्भव समझती हो? सोचती हो कि तुम्हारा नारी धर्म नष्ट हो जायगा? और सहसा मैं कहीं पागल तो नहीं हो गया, इसे भी देख रही हो!" फिर कुछ मुसकरा कर राजा बोले—"नहीं प्रिये! मैं पागल नहीं हुआ। मेरी बुद्धि ठिकाने पर ही है। इसके लिए कुछ आशङ्का मत करो। मैं बहुत सहज बुद्धि से और शान्त स्थिर चित्त से तुमसे कहता हूँ, तुम अपने पति की पति रख लो—जगत् को सतीत्व की पराकाष्ठा दिखाओ! देखो, राजनीति के मैदान में विपत्ति समय—दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन [illegible] कर—प्रजा की रक्षा के लिए—सब समय यदि मैं सत्य को पदाघात

न बचा सकता होऊं,—परन्तु इस मूर्तिमान धर्मक्षेत्र में, इस पुनीत अवसर पर, सत्य की रक्षा करने के लिए मैं बाध्य ही हूँ। क्योंकि, अब मैं राजा हूँ—ईश्वर ने अब मुझको सब के ऊपर प्रभुता के पद पर बैठा दिया है।"

प्रताप के इस उदार धर्मव्रत और कर्त्तव्य-बुद्धि को देख—ऊंचे से ऊंचे लक्ष्य की ओर उसके चित्त की ऐसी दृढ़ता देख—सभा के सारे लोगों के शरीरों पर रोंगटे खड़े हो गये। सब लोग विस्मित होकर टकटकी बांध कर देखने लगे। सभी मन ही मन राजा को प्रीति की पुष्पाञ्जलि देने लगे।

सती की मूर्त्ति पद्मिनी अब नेत्र डबडबा कर, रोनी सी सूरत बना, बड़ी धीरज से बोली, "महाराज! प्रभु! आज दासी को यह क्या शिक्षा दी जा रही है? ऐसी सीख तो मुझ को जीवन भर में और कभी नहीं मिली थी!"

प्रताप ने उत्तर दिया—"यह मैं जानता हूं। जीवनकाल के मध्याह्न (बीचो-बीच) में आज तुम्हारे लिए यह शिक्षा बिलकुल नयी है, यह मैं जानता हूँ। पर यही सार शिक्षा है। जो स्त्री विपत्ति के समय पति के धर्म की सहायक होती है,

यही सची सहधर्मिणी है। देखो, सत्य से बढ़कर धर्म दूसरा नहीं है। मैं अब उसी सत्य से बँध गया हूँ। तुम मुझको सत्य-पाश से छुड़ाकर सची सहधर्मिणी ही का काम करो।"

पद्मिनी क्षण भर चुप रही। तब एक लम्बी सांस लेकर गद्गद् कण्ठ से बोली 'स्वामिन्'! क्षमा करो। दासी आपके उपदेश का मतलब समझने की योग्यता नहीं रखती। परन्तु आप मेरे आराध्य देवता हैं—मेरे प्राणों के मालिक हैं। आप से बढ़कर महागुरु मेरे लिए और कोई नहीं है। आप मुझको नरक में भी गिरने कहो तो मैं तैयार हूं। सो मैं आपकी आज्ञा पालने के लिए तैयार हो गयी।"

सभा में "हरि! हरि!" की ध्वनि होने लगी।

अब प्रताप ने आनन्द से उमड़ते हुए कण्ठ से कहा—"सति! तुमने सार धर्म समझ लिया है। स्त्री के लिए पति ही देवता है। पति को छोड़ सती दूसरा ईश्वर नहीं जानती। अतः पति की बात मान कर तुमने परलोक में अक्षय पुण्य बटोर लिया। और यह भी निश्चय विश्वास रखना—आपत्ति की इच्छा पूर्ण करने में तुम को कभी पाप नहीं छू सकेगा।

वरन् आग में तपाये हुए सोने की भांति तुम्हारा सतीधर्म और भी विशुद्ध हो गया। लोकसमाज में इस बात से कलङ्क हो सकता है—परन्तु जो मानवी बुद्धि के अगोचर हैं, जो सर्व-साक्षी और सर्वान्तर्यामी हैं,—वही लोकेश्वर ही तुम्हारे कार्य का न्याय करेंगे।"

पद्मिनी ने चुपचाप पति के मुख की ओर निहार कर फिर एक लम्बी साँस ली। प्रताप फिर कहने लगे—"देखो, मन के अगोचर कुछ नहीं है। यदि तुम मन ही मन मेरा ध्यान कर, मुझ में डूब कर, मेरी प्रीति में रम कर, दैव की दुर्घटना से, पराये पुरुष ही के वश में पड़ जाने के लिए बेवश हो जाओ—तो तुमको पाप नहीं छुएगा। क्योंकि हम लोगों का यह स्थूल शरीर मांस का लोथड़ा भर है। मन को सच्चा रख, प्रेमास्पद में जीवन का यथा सर्वस्व अर्पण कर, दैवाधीन हो पराये पुरुष से सम्मिलित होने से भी सती का सतीत्व नष्ट नहीं होता। क्योंकि स्वामी के साथ अन्तर ही अन्तर का रमण—आत्मा का आत्मा में रमण—ही असली रमण है, वही सती का नारी-धर्म है। नहीं तो इन्द्रियों के सुख के लिए रमण—यह तो पशुओं का धर्म है। अतः हे सति! मैं फिर कहता हूँ,—ब्राह्मण की प्रार्थना पूर्ण

सती

हिमालय के जिस भाग में इस समय शिमला नाम का पहाड़ पाया जाता है, उसका एक अंश दगशाई पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। दगशाई शब्द दक्ष शब्द से बिगड़ कर बना है। हिमालय के पुराने पहाड़ी लोग अभी तक उसे दक्षा पहाड़ कहते हैं। इसी प्रान्त में किसी समय में दक्ष नाम का एक प्रजापति राजा हो गया है। दक्ष के बहुत सी कन्याएं थीं। कहा जाता है कि वे सब अनेक देवताओं से ब्याही गई थीं। उन सब कन्याओं में छोटी का नाम सती था। सती के पति महादेव योगी पुरुष थे। उनको सांसारिक भोग विलास पसन्द नहीं था। सदा भस्म रमाये रहते और भूत प्रेतों के साथ अलौकिक विद्या की सिद्धि में समय बिताया करते थे। दक्ष को महादेव के ये आचरण पसन्द नहीं थे। इसी लिए वह महादेव को अपने पास नहीं फटकने देता, न अपनी कन्या सती ही की खोज खबर लेता था।

एक बार दक्ष प्रजापति ने कोई विशाल यज्ञ रचा। इस अवसर पर उसने देवता और ऋषियों को यज्ञ में भाग लेने के

लिए न्योता दिया, पर महादेव को नहीं बुलवाया। नारद जी को सब जगह न्योता ले जाने की आज्ञा थी। नारद जब चलने लगे तो दक्ष ने उनको समझाकर कह दिया कि "हे महर्षे! मैं बृहस्पति नामक सुपरिचित यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहता हूँ। आप कृपा करके स्वर्ग, मर्त्य, पाताल के सभी प्रधान प्रधान पुरुषों को निमन्त्रण दे आइये; पर देखिए, मेरा जामाता शिव इस यज्ञ में न आने पावे।" नारद ने ऐसा ही किया। विद्वेषी और गुणी का आदर न करनेवाले दक्ष की इच्छा पूरी हो गयी। पर मुनिवर नारद मन ही मन सोचने लगे, "जो स्वयं योगीश्वर हैं, जिनके बिना कोई यज्ञ पूर्ण नहीं होता, ऐसे देवों के देव महादेव का न्योता नहीं हुआ। इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।" पर नारद क्या कर सकते थे? मन ही मन कुनमुनाते रह गये।

होते होते यह समाचार दक्षनन्दिनी सती के कानों तक भी पहुँच गया। स्त्रियों का स्वभाव ही यही होता है कि नैहर में किसी उत्सव आनन्द की बात सुनते ही वे भी उसमें सम्मिलित होने के लिए उतावली करने लगती हैं। सती की भी यही दशा थी। वह पिता के घर विराट यज्ञ की बात सुनकर जन्मभूमि और नैहर देखने के लिए अधीर होने लगी। महादेव ने बहुत समझाया। परन्तु सती ने उनकी एक भी बात न

लगीं। अन्त में शिव ने कहा—"हे शोभने ! तुम मेरी अर्धांङ्गी और सहधर्मिणी हो, यह बात तुमने मुझ से कितने ही बार कहा है। यदि तुम्हारा कहना सत्य हो तो तुम्हारे पति के अपमान से तुम को अपना भी अपमान समझना चाहिए। और बिना बुलाये तो वहाँ जाना भी उचित नहीं। तुम्हारे सब नातेदार, और तुम्हारी सब बहिनें अपने अपने पतियों के साथ निमन्त्रित होकर आयीं होंगी। पर मेरा और तुम्हारा निमन्त्रण नहीं हुआ। दक्ष राजा ने जान बूझकर यह अपमान किया है। बिना बुलाये मित्र के घर जाने में कुछ बुराई नहीं होती, परन्तु यह मित्र भी अमित्र जैसा बर्ताव करे तो वहां जाने की विधि नहीं है। श्वशुर के घर में बिना बुलाये जाना तो बिलकुल अधमता और निर्लज्जता का काम है।"

इस प्रकार के उपदेश-वाक्यों से भी सती के चित्त में धीरज न आया। उन्हें बहुत क्रोध और अपमान दिखाने लगीं और शिव के क्रोध से बार बार आंसू बहाती हुई कहने लगीं [illegible]

सब को देख सती को आनन्द तो होने लगा, पर थोड़ी देर में वह आनन्द निरानन्द में बदल गया। सती के पिता महाराज दक्ष ने उसके आने पर एक भी प्यार की बात कह कर कन्या का आदर सत्कार न किया। सती की माता और बहिनें प्रेम से उसके शरीर से लिपट गयीं और उसको अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्र, आभूषण और आसन आदि देने लगीं। परन्तु सती ने उनको न लिया। धीरे धीरे खोज करने पर सती को मालूम हो गया कि उसके पिता ने जान बूझ कर शिव और सती की अवमानना करने की ठान ली है और यह भी आज्ञा दे रक्खी है कि शिव को किसी प्रकार से भी यज्ञ का भाग देकर सम्मानित न किया जावे। इधर यह सब बात देख सुन कर जब शिव के अनुचर दक्ष को मार यज्ञ का ध्वंस करने के लिए तैयार हो गये। तब सती ने उनको रोका और दक्ष की ओर निहार कर बोली—

"हे पिता! जो सारे संसार में श्रेष्ठतम हैं, जो कभी किसी से विरोध नहीं करते, जिनके पास प्यारा बेप्यारा दोनों बराबर हैं, आप ऐसे योगी पुरुष की निन्दा कर रहे हैं। अधम मनुष्य गुणों को दोष समझता है। आप शायद इस जड़ शरीर ही को आत्मा समझते होंगे। पराई निन्दा असाधुओं का काम

है। ऐसे अपराधी समुचित दण्ड पाते हैं। जिनका दो अक्षरों वाला (शिव) पवित्र नाम को स्मरण कर मनुष्य पाप से मुक्त हो जाते हैं, जिनका शासन नियम अलङ्घ्य है, जो पवित्र में भी पवित्रतर हैं, आप ऐसे कल्याणकारी शिव से बैर करके अशिव (अकल्याण) उत्पन्न कर रहे हैं।"

कन्या के मुख से ऐसी बातें सुनकर भी दक्ष ने जब कुछ उत्तर न दिया तो सती ने फिर जो कुछ कहा, उसमें करुण रस के साथ ही सौन्दर्य, धैर्य, साहस और महत्त्व भी भरा था। संस्कृत भागवत में इस भाग का अनुवाद इस प्रकार हो सकता है—

"धर्मरक्षक स्वामी की निन्दा सुन स्त्री यदि निन्दा करनेवाले को न मार सके, या स्वयं ही न मर सके, तो उसको अपने दोनों कानों को दबा वहाँ से हट जाना चाहिए। यदि उसमें सामर्थ्य हो तो वह निन्दाकारी की जिह्वा काट ले। इसी से सच्ची स्त्री के सतीत्व और आत्ममर्यादा की रक्षा होती है। अतः हे पिता जी! मैं और अपने इस शरीर को नहीं रखना चाहती, क्योंकि यह आप ही से उत्पन्न हुआ है। आपने नीलकण्ठ की निन्दा की है। हे पिता! मेरा मुख्य सम्बन्ध के

धनसम्पत्ति सांसारिक विषयों ही में लगी रहती है, परन्तु भगवान का ऐश्वर्य इच्छा मात्र ही उत्पन्न होता है। ब्रह्मविद् मनुष्य भी इस प्रकार का ऐश्वर्य भोग सकते हैं। ऐसा न होता तो "मैं (दक्ष) धनी हूँ", और "शिव निर्धन हैं", आप में ऐसा अभिमान क्यों होने लगता ! हे पिता ! मुझे इस देह से और कुछ प्रयोजन नहीं। इसकी उत्पत्ति बहुत बुरी है। आप बहुत बुरे मनुष्य हैं। आप के साथ सम्बन्ध रहने से मुझ को बड़ी लज्जा हो रही है। अतः महात्मा के अपराधी मनुष्य से जिसका जन्म हुआ हो, उस जन्म को धिक्कार है। भगवान शङ्कर जभी मुझ को दाक्षायणी कह कर पुकारते हैं, तभी मुझ को सुधि हो जाती है कि मेरा सम्बन्ध आप के साथ है। इससे मेरा चित्त विचलित होने लगता है। अतः आपकी देह से उत्पन्न हुए मृत देह की भांति मैं इस देह को तज दूंगी। पंडित लोग कहा करते हैं कि भूल से या मोहवश कोई अशुचि वस्तु खा ली जावे तो वमन कर डालने ही से उससे फिर शुद्ध हुआ जा सकता है। परन्तु जो लोग महात्मों की निन्दा कानों में भर देते हैं, उनकी अशुद्धता किसी तरह नहीं दूर हो सकती। ऐसे निन्दा करने और निन्दा सुनने वाले दोनों [illegible] हैं मनुष्य। इस लिए दुःखी होते हैं, परन्तु ईश्वर। शिव का चाहे जितनी निन्दा हुआ करे, वह

अस्तु, सती ने योगबल से प्राण तज दिये। ऊपर ह
भी समाधि लेने की बात पढ़ चुके हैं, सिद्धि-प्राप्त महात्मा
इच्छानुसार पञ्चभौतिक देह को इस प्रकार पञ्चभूत
मिला सकते हैं। स्त्रियां भी पहले योगविद्या में पारदर्शिनी
सकती थीं।

सती के शरीर छोड़ देने पर शिव के अनुचरों ने दक्ष
सिर काट लिया और यज्ञ के सब सामान तोड़ फोड़ कर
कर दिये। दक्ष की विराट सभा और उसके विराट यज्ञ
चिह्न मात्र भी न रहा। इधर शिव को सती के विरह
इतना दुख हुआ कि वह बहुत वर्षों तक व्याकुल होकर प
रहे।

दमयन्ती

आजकल जिस भाग को बरार कहते हैं, उसी के एक अंश में पूर्वकाल में विदर्भ नाम का एक नगर था। एक समय इस नगर के राजा का नाम भीमसेन था। उसके कोई सन्तति न होने से वह बहुत दुःखी रहा करता। परन्तु दमनक नाम के एक ऋषि के आशीर्वाद से भीमसेन की रानी ने एक सर्व सुलक्षणा सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। राजा ने दमनक ऋषि के आशीर्वाद की बात को याद रखने की इच्छा से कन्या का नाम दमयन्ती रक्खा। तब वह उसे अनेक विद्याओं से सुशिक्षित बनाने लगा। कन्या जैसी रूपवती थी, गुणवती भी वैसी ही हो गयी। उसके अतुल रूप गुण का यश देश विदेश में गाया जाने लगा।

निषध देश के अधीश वीरसेन के पुत्र नल ने भी दमयन्ती की बात सुनी और वह उसे पाने के लिए अहर्निश चिन्ता करने लगा। उधर दमयन्ती को भी नल के रूप गुण का पता लग गया, और वह भी मन ही मन उसकी बात सोचा करती।

इस प्रकार दोनों ही परस्पर की गुणावली सुन सुन कर ही परस्पर की ओर आकृष्ट हो गये।

जब दमयन्ती की माता को सहेलियों के मुख से पता लगा कि दमयन्ती का मन निषद राजकुमार नल की ओर खिंच गया है तो उसने राजा से कहा कि अब कन्या के स्वयम्बर रचने में देर करना ठीक नहीं। राजा ने भी रानी की बात मान ली और देश देश के राजाओं के पास स्वयम्बर की सूचना देकर निमन्त्रण भेज दिया। ये राजा लोग पहले ही से दमयन्ती के रूप गुण की बात सुन चुके थे, सो स्वयम्बर की बात सुन सब लोग आनन्दित होकर विदर्भ नगर आने लगे। उनके हाथी, घोड़े, रथ अनुचरों से विदर्भ नगर भर गया। विदर्भराज भी उन सब राजाओं का उचित रीति से आदर सत्कार करने लगे।

नल ने देखा, दमयन्ती संसार को मोह लेने का रूप रखती है, और उसकी लोनाई की जितनी प्रशंसा सुनी गयी थी, वह सब सत्य है। दमयन्ती भी नल का मनोहर रूप देखकर बहुत प्रसन्न हुई, और सारी सभा के सामने उसने नल के गले में जयमाल पहिरा दिया। नल राजा ने आनन्द सागर में

हिचकियां लेते हुए अङ्गीकार किया कि मैं तुमको अपनी आत्मा-स्वरूप समझूंगा और कभी तुम्हें न छोड़ूंगा।

तब राजा नल दमयन्ती को लेकर अपने घर लौटा और दोनों बड़े सुख से दिन बिताने लगे। इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये। इस अवसर में उनके एक पुत्र और एक कन्या भी हो गयी। पुत्र का नाम इन्द्रसेन पड़ा और कन्या का इन्द्रसेना।

नल राजा का एक छोटा भाई था। उसका नाम पुष्कर था। वह पासा खेलने में बड़ा चतुर था। नल भी पासा खेलना जानता था। पुष्कर नल की बढ़ती और सुख के साधनों को देख देख मन ही मन कुढ़ा करता। उसने उसे धीरे धीरे फुसलाकर पासा खेलने में लगाया। नल को भी दुर्मति हो गयी और वह छोटे भाई के साथ दांव बदकर खेलने लगा। परन्तु उसके दिन खोटे आ गये थे। दिन का अनहित होने लगा। वह एक भी बाजी न जीत सका। बार बार हारता ही गया। इससे उसको क्रोध भी चढ़ आया, और गुस्से में आकर राज-कोष में जो धन रत्न थे, सब धीरे धीरे खो बैठा। नल के इष्ट मित्र और मन्त्रियों ने उसको बहुत समझाया, जूआ खेलने से

राज्य भर में कहीं कोई आश्रय न मिलने से तीन दिन तक भूखा ही बिता देना पड़ा। चौथे दिन भूख प्यास से बहुत दुखी होकर राजा रानी ने एक नदी के किनारे आ अञ्जलि से जल पान किया। रात्रि भर वहीं बिता दोनों घने जङ्गलों में जा पैठे। जङ्गल के अनबोल वृक्ष दयाहीन मनुष्य जाति से अधिक शीलवान और दयालु देख पड़े, क्योंकि अब जङ्गली फलों को चुन चुन कर राजा रानी खा लेते और बिलकुल भूखों मरने से बच जाते थे।

इस प्रकार कई दिन बीत गये। तब एक दिन एक विचित्र पक्षी देख पड़ा। उसके पंख सोने की भांति सुन्दर और चमकदार थे। राजा ने सोचा, इसे किसी तरह पकड़ सकें तो इसके पर बेचकर हमको कुछ मिल जायगा और उससे हमारा दुख भी कुछ दिन के लिए हलका पड़ जायगा। इसके मांस से भी एक दिन पेट भर जायगा। यों सोच, राजा ने नंगा हो पक्षी को पकड़ने के लिए उस पर अपनी धोती डाल दी। पर वह पक्षी न जाने कैसा था, कि ऊपर धोती गिरते ही वह धोती लिये हुए उड़ गया। राजा नङ्ग धड़ङ्ग होकर अकचकाकर देखता ही रह गया। तब उसने नेत्रों में आंसू भर कर रानी से कहा, "प्रिये! तुमने परमेश्वर की विडम्बना देखी? एक मात्र धोती बच गयी थी, सो भी छिन गयी। देखो, तुम स्त्री हो,

तुम्हारा स्वभाव बहुत कोमल है, मेरे साथ वनवास करोगी तो बहुत दुःख पाओगी। मेरी बात मान लो। यहाँ से तुम विदर्भ नगर अपने पिता के पास चली जाओ। कभी फिर मेरे दिन फिरेंगे तो हमारी तुम्हारी फिर भेंट होगी।"

दमयन्ती नल के ऐसे वचन सुन रोने लगी और बोली, "स्वामिन्! आप कैसे इस प्रकार के कठोर वचन बोलते हैं! आपको छोड़ पिता के घर क्या मुझ को यहां से अधिक सुख मिलेगा! ऐसा आप कभी मत सोचिए। आप मुझे मत छोड़िए, नहीं तो जङ्गलों में आप को बहुत दुःख मिलेगा। मैं पास रहूँगी तो आप को कोई दुःख न होने पावेगा। आप मुझ को भले ही छोड़ दें, पर मैं आप को नहीं छोड़ सकूंगी। जो आप मुझ को छोड़ ही देंगे तो मैं आत्मघात कर लूंगी। अब मेरी एक बात मान लीजिए। आप मेरे संग मेरे नैहर को चलिए। वहां आप को कुछ भी कष्ट न होगा। पिता जी आप का बहुत आदर करेंगे।" नल ने कहा, "प्यारी! तुमको याद होगा कि विवाह काल में मैं कैसे समारोह से वहां गया था। अब इस दीन वेश से ससुराल जाऊंगा तो मेरा बड़ा अपमान होगा, और लोगों में मेरी हंसी होगी। उससे तो जङ्गलों ही में भूखों मरना अच्छा है। इस संकट में भी मैं कभी ससुराल नहीं जाऊंगा।"

दमयन्ती ने विदर्भ जाने के लिए स्वामी को और भी अनेक भांति से समझाया, पर नल किसी तरह राज़ी न हुआ। तब दमयन्ती ने कहा, मेरी चीर का एक पल्ला आप अपनी कमर से लपेट लें। निदान ऐसा ही हुआ, और आधी ही चीर से दमयन्ती भी अपना शरीर लपेटे रही। उसने सोचा कि जब तक हम दोनों एक ही वस्त्र पहिरे रहेंगे, तब तक राजा मुझ को छोड़ कर कहीं नहीं जा सकेगा।

अब, इस भांति एक ही वस्त्र पहिर लेने के कारण जल्दी चलना उनके लिए सम्भव न रहा। वे धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर जाकर, भूख से व्याकुल हो, दोनों एक पेड़ के नीचे पहुँच धरती पर पड़कर लेट रहे। नल उसे छोड़ कर कहीं चला न जावे, इस भय से दमयन्ती ने उसको अपनी दोनों भुजाओं से बांध रखा। परन्तु दिन भर चलती चलती वह इतनी थक गयी थी कि थोड़ी ही देर में वह गहरी नींद में डूब गयी और उसकी भुजलताओं का गहरा प्रेममय बन्धन आप ही आप शिथिल होकर खुल गया। राज्य-नाश और नारी के संग होने की दारुण दुश्चिन्ताओं से एक बार भी नल की आंखों में निद्रा न आयी। महिषी को अब गहरी नींद से अचेत देखकर उसने सोचा, इस घने कानन में रमणी को संग रखने से मेरा

दमयन्ती ने विदर्भ जाने के लिए स्वामी को और भी अनेक भांति से समझाया, पर नल किसी तरह राजी न हुआ। तब दमयन्ती ने कहा, मेरी चीर का एक पल्ला आप अपनी कमर से लपेट लें। निदान ऐसा ही हुआ, और आधी ही चीर से दमयन्ती भी अपना शरीर लपेटे रही। उसने सोचा कि जब तक हम दोनों एक ही वस्त्र पहिरे रहेंगे, तब तक राजा मुझ को छोड़ कर कहीं नहीं जा सकेगा।

अब, इस भांति एक ही वस्त्र पहिर लेने के कारण जल्दी चलना उनके लिए सम्भव न रहा। वे धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। कुछ दूर जाकर, भूख से व्याकुल हो, दोनों एक पेड़ के नीचे पहुँच धरती पर पड़कर लेट रहे। नल उसे छोड़ कर कहीं चला न जावे, इस भय से दमयन्ती ने उसको अपनी दोनों भुजाओं से बांध रखा। परन्तु दिन भर चलती चलती वह इतनी थक गयी थी कि थोड़ी ही देर में वह गहरी नींद में डूब गयी और उसकी भुजलताओं का गहरा प्रेममय बन्धन आप ही आप शिथिल होकर खुल गया। राज्य-नाश और नारी के संग होने की दारुण दुश्चिन्ताओं से एक बार भी नल की आंखों में निद्रा न आयी। महिषी को अब गहरी नींद से अचेत देखकर उसने सोचा, इस घने कानन में रमणी को संग रखने से मेरा

दुःख अधिक बढ़ जायगा। इसको जो दुःख मेरे साथ होगा, उसका तो सोचना ही क्या? यदि मैं इसे यहीं छोड़ दूँ तो यह ज्यों त्यों कर अपने पिता के घर पहुँच ही जायगी। बहुत दिन इसको दुःख न भोगना पड़ेगा। मैं भी अकेला होऊँगा तो जहां जी चाहेगा चला जाऊँगा।

इस प्रकार चिन्ता कर राजा दमयन्ती के पास से उठकर चलने लगा, तो उसने देखा कि दोनों एक ही वस्त्र पहिरे हैं, और इस दशा में उठने से कहीं दमयन्ती जग न पड़े, इस भय से वह थोड़ी देर और भी वहीं पड़ा रहा। अन्त में ज्यों त्यों कर उसने चीर का एक टुकड़ा फाड़ कर एक लंगोटी लगा ली, और दूसरा खंड पत्नी के शरीर ही पर छोड़ कर वहां से चल खड़ा हुआ। थोड़ी देर चलकर उसका चित्त घबराने लगा और उसकी प्यारी क्या कर रही है, इसे देखने के लिए इसी पांव फिर उसके पास लौट आया। दमयन्ती नींद से अचेत पड़ी थी। उसको इस नयी विपत्ति का कुछ पता भी न था। तब राजा फफक कर रोने लगा और मन ही मन सोचा, "इस घनघोर वन में जिसके लिए हूँ जिसके सहारे है मैं उसको निस्सहाय यहाँ छोड़ कैसे इसके दुःख से ऊपर चला हूँ? [illegible] [illegible]

"मैं राजा नल का सारथी था। राजा ने पाशा खेलकर अपना राज गंवा दिया, तब मेरी नौकरी छुट गयी। मैं भली प्रकार घोड़े हांकना जानता हूँ। सो मेरे योग्य कोई काम बता कर मेरा भी पालन कीजिए।" नल राजा के घोड़े भारत-वर्ष भर में प्रसिद्ध थे। अयोध्याधीश राजा ऋतुपर्ण ने बाहुक का गुण नल के नाम ही से लख लिया और अपने घोड़ों की देख भाल के लिए उसे रख लिया।

नल इस नौकरी के सहारे अयोध्या नगर में रहने लगा। परन्तु दमयन्ती का विछोह उसे रात दिन सताता रहा। उसे वन में अकेली छोड़ आया था, वह कहां गयी, उसने क्या किया, इत्यादि चिन्ताओं से पल भर के लिए उसे सुख न मिलता, और अपने ही को सारे दुःख की जड़ जान वह बहुत पछताया करता। सोते जागते, खाते पीते, आठो पहर दमयन्ती ही उसकी चिन्ता की सार बन गयी।

इस भांति नल और दमयन्ती दोनों दो ठौरों पर जब टिक गये, विदर्भाधीश भीमसेन को जामातृ के राज्यनाश और कन्या दमयन्ती के वन-गमन के समाचार मिले, और वह अथाह सोच में डूब गया। निदान बेटी दामाद का पता

से कही। उसे सुन दमयन्ती रोने लगी। राजा सुबाहु ने दमयन्ती का सच्चा समाचार पाकर कहा, "बेटी, तू अपनी मौसी के पास है। हम तो तेरे मौसा हैं।" राजमहिषी भी इस समाचार को सुनते ही झटपट वहां आ पहुँची और दमयन्ती को गोद में बैठाकर पछताने लगी कि "हाय! मुझ को अब तक तूने अपना सच्चा हाल न बताया था, न जाने तुझ को कैसे कैसे दुःख मिले होंगे।" अस्तु, दमयन्ती का बहुत लाड़ प्यार और आदर होने लगा। अन्त में जब दमयन्ती पित्रालय जाने को बार बार कहने लगी तो राजमहिषी ने उसे भेज देने के लिए राजी होकर भी स्नेह के कारण और भी कुछ समय तक अपने पास रखा। तब बड़े समारोह से सुदेव के साथ उसे विदर्भ भेज दिया।

दमयन्ती के विदर्भ नगर में पदार्पण करते ही नगर भर में आनन्द छा गया। अपनी इकलौती कन्या का मुख देख राजा रानी के मानो मृत शरीर में प्राण लौट आये। सुदेव विप्र को अनेक धन और जागीर पारितोषिक में मिले।

तब दमयन्ती के दुःख का आदि से अन्त तक का विवरण सुन राजा रानी बहुत दुःखी हुए; परन्तु जगदीश्वर ने उसके

दूर कैसे पहुँच सकते हैं, इसी बात की भारी चिन्ता होने लगी है। सो इस अवसर पर तुम अपनी चतुराई न दिखा सके तो वहां पहुँचने का दूसरा ढंग मुझ को नहीं सूझता।"

बाहुक सारथी मन ही मन कहने लगा, "यह कैसी बात सुनने में आयी! दमयन्ती के तो बेटा बेटी हैं, तिस पर भी वह फिर अपना स्वयम्वर करना चाहती है! पति-सुख न रहे तो चाहे फिर अपना विवाह कर भी सकती, पर जिसके बेटा बेटी मौजूद हैं, उसका विवाह करना तो अनुचित है। तिस पर दमयन्ती तो पतिव्रता रमणी है, वह कभी ऐसा कर्म नहीं कर सकती। मैंने उसको बहुत दुख दिये हैं, इसी से उसके मन में क्रोध हो गया होगा, और इसीलिए उसने यह चतुराई की है। मुझे तो जान पड़ता है कि मुझी को पा लेने के लिए यह यत्न सूझना हो रहा है।"

ऐसा सोच सारथी ने राजा से कहा, "महाराज! कोई चिन्ता की बात नहीं, आप तैयार हो जाइए; मैं आज रात ही को आप को विदर्भ पहुँचाऊँगा।" ऋतुपर्ण इस बात से बहुत प्रसन्न होकर बोला, "अच्छा, तुम जाकर घोड़े जोतो, मैं अभी आता हूँ।" सारथी ने आज्ञा पाते ही रथ में चुनके दो घोड़े

बाहर निकाले। राजा ने कहा,—"इतने दुबले घोड़े भला इतनी दूर पहुंचा सकेंगे!" बाहुक बोला, "आज के काम के लिए मोटे ताज़े घोड़े ठीक न होंगे।" रथ चला दिया गया। घोड़े हवा से बात करते हुए दौड़ चले। ऋतुपर्ण सोचने लगा, रथ चलाने की ऐसी शक्ति तो एक राजा नल ही में सुनी जाती थी। कहीं यही तो नलराज नहीं है? या, बाहुक उन्हीं के पास रहता था, इसने राजा नल से यह विद्या पायी होगी। राजा ऐसी ही बातें सोच रहा था कि उसका दुपट्टा उड़कर धरती पर जा गिरा। राजा ने सारथी से कहा, रथ को तनिक रोक लो, मेरा दुपट्टा गिर पड़ा है। सारथी बोला, दुपट्टा बहुत दूर पीछे छुट गया। अब रथ घुमाने से आज विदर्भ पहुँचना असम्भव हो जायगा। इस बात को सुन राजा को चुप हो जाना पड़ा। रथ वेग से दौड़ता रहा। पौ फटने के पहिले ही पहिले वे लोग विदर्भ नगर में जा पहुंचे। कहां अयोध्या, कहां बरार! राजा नल का रथ हवाई जहाज की तरह चलता होगा।

भीमसेन ने ऋतुपर्ण का यथोचित सम्मान किया। परंतु अयोध्यापति ने देखा, वहां स्वयम्बर सभा का कुछ भी प्रबन्ध न था, न कोई दूसरे राजा लोग ही वहां आये हुए थे।

दुःख झेलने पड़े। उसने पति के शोक से खाना पीना तक छोड़ दिया है।"

केशिनी के मुख से दमयन्ती के दुःख की बात सुन नल के नेत्र पसीज आये। उसने कहा, "कुलवती युवती प्राणान्त होने पर भी पति के दोष किसी दूसरे मनुष्य से प्रकट नहीं करती। वह मृत्यु को बरु सह लेती है, पर पतिनिन्दा से अपने को बचाया करती है। नल दमयन्ती को वन में छोड़ गये थे, यह उन्होंने जान बूझ कर नहीं किया था। राजपाट गंवा, गली गली के कंगाल बन, उनकी सारी सुध बुध नष्ट हो गयी थी। सो उनसे कोई अनुचित काम हो भी गया हो तो दमयन्ती को उन पर क्रोध करना न चाहिए।" यों कहकर नल अब फूट कर रोने लगा।

केशिनी ने अन्तःपुर में जाकर दमयन्ती से सारी बातें कह दीं। दमयन्ती ने समझ लिया कि यही राजा नल है। इसलिए उसने केशिनी से कहा कि तुम फिर जाकर देखो वह क्या करते हैं। केशिनी फिर नल को देखकर लौट आयी और बोली, "यह तो कोई देवानुग्रह पाये हुए मनुष्य हैं; क्योंकि ऋतुपर्ण राजा के लिए मांस आदि जितनी सामग्रियां

केशनी लौट गयी, और कुमार कुमारी को दमयन्ती के पास पहुंचाकर उसने फिर सारथी की सारी बातें ज्यों की त्यों कह दीं। नल-प्रिया इन सब बातों को सुन मारे आनन्द के फूली न समायी। अपनी माता से सारा ब्योरा कह, उसकी आज्ञा ले, वह स्वयं नल के पास अश्वशाला को गयी। अपने संग वह कुमार कुमारी को भी ले गयी।

दमयन्ती कन्या पुत्र को गोद में लिये, नल के सामने खड़ी हो, उसका मलिन स्वरूप देख, नेत्रों में आंसू भरकर कहने लगी, "हे गुणधाम! यह आपका कैसा स्वरूप हो गया? आप अभी तक बाहुकके नाम से अपना परिचय दे रहे हैं? भला कहिए तो, जो नारी भूख प्यास और राह चलने के परिश्रम से हारी मांदी एक मात्र वस्त्र पहिरे आपके साथ वन में पड़ी सो रही थी, उसे आप अचेत और अकेली छोड़ कैसे चले गये? संसार में जो नल परम धार्मिक के नाम से प्रसिद्ध हैं, भला उनकी ऐसी रीति? उन्होंने किस अपराध से नारी को वन में छोड़ दिया? जो नारी जन्म भर आपकी अनुगामिनी पत्नी रही, उसको यह पुरस्कार! भरी सभा में आपने प्रतिज्ञा की थी कि अपनी पत्नी को प्राणों के समान मानेंगे। ऐसा वचन देकर कैसे उसी नारि को आपने सिंह, सर्प आदि भयावने जीवों के मुख में डाल दिया!"

का बोझ भी अपने सिर चढ़ा लिया है। नहीं तो मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं फिर दूसरा पति ग्रहण करूं। कोई दूसरा राजा भी स्वयम्वर के लिए यहां नहीं बुलवाया गया है। निमन्त्रण तो अकेले अयोध्या ही को भेजा गया था, क्योंकि मैंने सुना था कि आप यहां हैं। सो मैंने सोचा कि मेरे दूसरे स्वयम्वर की बात सुनकर आप यहां अवश्य ही आवेंगे। मेरी आशा निष्फल नहीं हुई। नहीं तो मेरा कोई दूसरा अभिप्राय न था। अतः इसके लिए मुझसे जो अपराध हुआ, आप उसे क्षमा कीजिए।"

नल के मन में जो कुछ थोड़ी बहुत शङ्का थी, दमयन्ती के इन वाक्यों से वह मिट गयी। वह समझ गया कि उसीको बुलवाने के लिए यह अनोखी चाल चली गयी थी। सो, बहुत दिनों पीछे उनके फिर मिल जाने से दोनों को अपार आनन्द हुआ।

जब राजा भीमसेन को मालूम हुआ कि नल इतने दिन ऋतुपर्ण नृपति का सारथी बनकर छिपा हुआ था, और वह आज फिर उसी के साथ विदर्भ नगर में आया है, तो वह आनन्द-सागर में डूब गया। ऋतुपर्ण यद्यपि दमयन्ती को पाने की आशा से हाथ धो बैठा, पर नल के साथ उसके पुने-

वन चला गया था। अब मुझको फिर एक बार तुम्हारे साथ खेलने की इच्छा है। यदि इस बार भी मैं हार जाऊँ तो जन्म भर तुम्हारा सेवक बनकर रहूँगा; और जो तुम हारोगे तो तुम और तुम्हारा सारा राज्य मेरा हो जायगा। सो, आओ, खेलो, नहीं तो अस्त्र लेकर मेरे साथ लड़ लो।"

पुष्कर नल की बात सुन बड़े जोर से ठठाकर हँसा और बोला, "एक बार तो तुम सब कुछ हार देश छोड़ भागे थे। पर दमयन्ती को बाज़ी में न रक्खा। मेरे मन में बड़ा खेद बना है कि दमयन्ती मेरे हाथ न लगने पायी। अच्छा आओ, तुम्हारी बात ही सही। इस बार हम लोग अपने आपे को बद कर पासा खेल लें।"

दैव की इच्छा सदा बलवती होती है। दैव ही मनुष्य को सदा सुख या दुःख दिया करता है। कोई नहीं कह सकता कि सुख बराबर मेरे ही भाग में रहेगा, या मुझको आमरण दुःख की ज्वाला ही में तड़पते रहना पड़ेगा। इस बार के खेल में नल की जय हुई। दैव ने पुष्कर का सारा हेकड़ा मिट्टी में मिला दी। नल की शान से पुष्कर थर थर कांपने लगा। उसने सोचा, "पिछली बार मैंने पासा खेल नल का सारा राज्य छीन

उसने असीम दुःख दिये थे, सो अब मेरे प्राण न बचेंगे। नल निस्सन्देह मुझको कठोर दण्ड दिये बिना न मानेगा।" परन्तु राजा नल बड़ा दयालु था। वह पुष्कर की तरह नीच नहीं था। छोटे भाई को भय से थर थर काँपते देख उसने बड़ी उदारता से कहा, "भाई, तुम डरो मत। मैंने जितने दुःख उठाये हैं, वह मेरे बुरे ग्रहों के कारण हुए थे। उसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं था। जो कुछ हो गया, उसके लिए तुम चिन्ता मत करो। पहिले जैसे रहा करते थे, उसी तरह सुख से रहा करो। मैं कभी तुम्हारा बुरा न करूंगा।"

नल की इस असीम करुणा को देख पुष्कर उनके चरणों पर गिर पड़ा। तब सब मन्त्रियों ने फिर नल को अपना राजा कहकर प्रणाम किया। इस भाँति नल के फिर राजा हो जाने से निषध राज्य की प्रजा-मण्डली में सुख की लहर उमड़ने लगी। कुछ दिनों बाद नल ने विदर्भ से रानी दमयन्ती और पुत्र-कन्या को भी बुलवा लिया और आजन्मकाल तक सुख से राज्य करता रहा।

लक्ष्मीबाई

प्राचीन हिन्दू साहित्य ही अकेला सती और आदर्श भारतीय नारीरत्नों की कथाओं से भरा हुआ है, किसी दूसरे समय में ऐसी स्त्रियां नहीं हुईं, ऐसा कहना अनुचित होगा। वैदिक और पौराणिक युगों के बाद मुसलमानों के समय की भी अनेक वीर और गुणवती महिलाओं की कीर्ति भारत वर्ष के इतिहास में बड़ी उज्ज्वलता के साथ छटा फैला रही है। फिर, वर्तमान काल में, यद्यपि भारतवर्ष दुर्भाग्य के फेर में पड़ कर स्त्रियों का उचित रीति से आदर करना भूल गया है, तिस पर भी भारतमाता की कोख से नारीरत्नों का जन्म लेना बिलकुल बन्द नहीं हुआ। इससे पहले हम दयावती रानी भवानी की कथा सुना चुके हैं। उसका प्रकाश भारत में अंगरेज़ी राज्य की नींव गाड़ी जाने के समय में हुआ, यह भी हमारी पाठिकाएं जान चुकी हैं। अब हम एक ऐसी महिला की कथा सुनाते हैं जो आज से कुल ६१—६२ वर्ष ही पहिले अपना नाम अमर बना गयी है।

कहना वह टाल न सके और मनुबाई ही को उन्होंने अपनी रानी बनायी। महाराष्ट्रों में कन्या के विवाह हो जाने पर उसका नाम बदल दिया जाता है। इस लिए मनुबाई अब लक्ष्मीबाई कहलायी। सुना जाता है कि विवाह के समय जब पुरोहित वर-कन्या का गांठ-बन्धन करने लगा, लक्ष्मीबाई ने ढिठाई से कहा था कि "खूब मज़बूत गांठ बांधना।" 'उस समय तो सब लोगों ने इस बात को सुन कर बहुत आश्चर्य माना था, परन्तु सचमुच वह गांठ-बन्धन की क्रिया ढीली ही निकली। क्योंकि लक्ष्मी का पति बहुत दिन नहीं जिया और अन्त में झांसी का राज्य भी उसके हाथ से निकल गया।

सन् १८५१ ई० में लक्ष्मीबाई के पुत्र हुआ। पर वह तीन ही महीने जीवित रहा। उसके मरने का शोक महाराज गङ्गाधर राव को इतना लगा कि वह बहुधा बीमार रहने लगे। सन् १८५३ में उनकी बीमारी बहुत बढ़ गयी। जब उनके जीने की आशा न रही तो उन्होंने दामोदरराव नामक एक बालक को गोद लिया। गोद लेने की क्रिया सब बातों में शास्त्रीय रीति अनुसार ही हुई थी। बुन्देलखंड के अंगरेज अफसर लोग भी उस समय मौजूद थे। तब महाराज ने बड़े लाट साहब को भी दामोदरराव को गोद लेने की सूचना भिजवा

परन्तु रानी ने ५०००) मासिक लेना अस्वीकार कर दिया और विलायत की सरकार से लिखा पढ़ी करनी चाही। पर वहां भी कुछ सुनाई न हुई और गवरनर-जनरल साहब की आज्ञा ज्यों की त्यों बनी रही। अब रानी का राजपाट छिन गया, वह पूजा पाठ और धर्म कर्म में लगकर अपने दिन काटने लगी।

ठीक इसी अवसर पर सन् १८५७ का गदर का समय आ पहुँचा। सब जगह अंगरेज़ी सरकार के हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने विद्रोह मचा दिया। झांसी में भी विद्रोह आरम्भ हो गया। झांसी में जो सरकारी हिन्दोस्तानी फौज थी, उसने बिगड़ कर अंगरेज़ों के बंगले जला दिये और उनके बाल बच्चों को मार डाला। अंगरेज़ों ने रानी से सहायता मांगी, पर विद्रोहियों ने यह समाचार रानी के पास तक न पहुँचने दिया और जो अंगरेज़ रानी के पास समाचार लेकर जा रहे थे, उनको पकड़ कर मार डाला। किले के भीतर भी अंगरेज़ मारे गये। विद्रोह करनेवाले अंगरेज़ी फौज के ही सिपाही थे, परन्तु सारा दोष रानी लक्ष्मीबाई के सिर मढ़ा गया।

रानी ने इस विद्रोह के समय अंगरेज़ों को भरसक सहायता दी थी। उसके पास कुल दो सौ ही मनुष्य थे। वह

कहा जाता है कि रानी अंगरेज़ों की विरोधी न थी। परन्तु अन्त में बेबस होकर आत्मरक्षा के लिए उसको भी अंगरेज़ी सेना युद्ध की तैयारी करनी पड़ी। उसकी सहायता के लिए इधर उधर से कई हज़ार मरहठे सिपाही आ पहुँचे। कई बार युद्ध हुए। परन्तु प्रतापी अंगरेज़ों के सामने वे लोग कुछ न कर सके। वे प्रत्येक बार हार गये। इन युद्धों में रानी ने स्वयं घोड़े पर सवार हो हथियार बांध युद्ध किया। जब रानी ने अपने बचने का कोई उपाय न देखा तब वह अपने बड़े बड़े सरदारों को साथ लेकर और अपने पुत्र दामोदरराव को अपनी पीठ से बाँध कर घोड़े पर सवार हो, अंगरेज़ों से लड़ती हुई, निकल भागीं। अंगरेज़ों ने रानी का पीछा किया, पर उसको पकड़ न पाया। परम प्रतापी अंगरेज़ों के समाने रानी की नई सेना कब तक ठहर सकती थी? कालपी, ग्वालियर, आदि कई स्थानों में युद्ध हुए, सभी जगह मरहठों की हार हुई। रानी की सहायता के लिए जो सरदार लोग आये थे, वे सब भाग गये। उनमें से राव जी देशवा और तात्या टोपी पकड़े गये।

स्वयं सर ह्यू रोज़ ने लिखा है कि "रानी साहिब की अति-शय ऊँची कुलीनता के कारण, अपने आश्रित और सैनिकों पर उनकी अपार उदारता के कारण और [illegible] संकट काल में

उनको अद्भुत धीरज के कारण, उनका प्रभाव बढ़ जाने से उनका दल बहुत भयङ्कर हो उठा। यद्यपि वह अबला थीं, तब भी वह विद्रोहियों में सबसे शूर और उत्तम सेना-नायक था।"

कहा जाता है कि दामोदरराव को पीठ से बांधे हुए रानी भागती भागती एक साधु की कुटी में पहुँची। वहां थोड़ा सा जल पीकर उसने अपना लोहू लुहान शरीर छोड़ दिया। पीछे से सरकार ने दामोदरराव को २००) महीना पेनशन कर दिया। अब वह इन्दौर में रहते हैं।

रानी लक्ष्मीबाई को चाहे जिस कारण से हो, हमारी सरकार के विरुद्ध शस्त्र उठाना पड़ा था। यह निस्सन्देह बड़े खेद की बात हुई। परन्तु ऐसा जान पड़ता है वह पहिले सरकार की तरफदार ही थी। समय के विरुद्ध होने से, उनके राज छिन जाने और सरकारी पेनशन लेना स्वीकार न करने आदि कारणों से ही सरकार का रानी पर से विश्वास हट गया था। रानी के सरदार लोग भी बहुत ढीले थे। उनसे भी उचित अवसर पर उचित कार्यों में भूलें हुई होंगी। इन्हीं कई कारणों से अन्त में रानी को सरकार से लड़ने के लिए

बेबस हो गयी, और उसका परिणाम भी उसको हाथों हाथ मिल गया। रानी ने भला बुरा जो कुछ किया, उसकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। हमको यही देखना है कि आज कल के समय में भी एक हिन्दोस्तानी महिला क्या क्या कर सकती है, और संकट आ पड़ने पर वह कैसे साहस और धीरत्व से काम कर सकती है। रानी लक्ष्मीबाई बड़ी दयावती थी। वह अपनी प्रजा के लिए साक्षात् माता-स्वरूपा ही थी। जब तक रानी लक्ष्मीबाई ने अंगरेज सरकार की तरफ से झांसी का राज संभाला, उसने बहुत अच्छी तरह काम किया। उन्होंने विद्रोही और लुटेरों को दण्ड देकर प्रजा की रक्षा की। हां, दुर्भाग्य से रानी के इन सब अच्छे कार्यों की रिपोर्ट सरकार के कानों तक पहुंचने नहीं पायें। नहीं तो हमारा विश्वास है कि यदि सारी बातें ठीक ठीक रीति से गवरनर-जेनरल साहब को मालूम हो जातीं तो वह कभी रानी के विरुद्ध युद्ध-अभियान की आज्ञा न देते। उन्होंने समझा कि रानी भी विद्रोहियों से मिली हुई है। जब दैव स्वयं विरोधी होता है, मनुष्य का कोई भी उपाय उचित होने पर भी नहीं चलने पाता। यह समय ही बड़ा विकट था, और रानी ने भी युद्ध भी किया उनके विरुद्ध ही इसका फल फलने लगा

सम्राज्ञी नूरजहान

अब तक हमने हिन्दू नारीरत्नों की कथाएं सुनायी हैं। परन्तु भारतमाता की गोद में खेलनेवाली मुसलमान कुल में उत्पन्न रमणियां भी ऐसी हो गयी हैं जो नारी-जाति का सम्मान बढ़ाने में समर्थ हो चुकी हैं। उनमें से यहां पर हम एक ऐसी मुसलमान रमणी की कथा कहते हैं जो इसी भारतवर्ष की राज राजेश्वरी सम्राज्ञी के पद पर सुशोभित होकर इस विशाल देश के शासनकार्य में बहुत काल तक भाग ले चुकी है। मुसलमान बादशाहों के अन्तःपुर में रहनेवाली सुन्दरियां बहुधा अपने पुरुषों की विलास की संगिनी मात्र ही हुआ करती थीं। परन्तु बेगम नूरजहान के सम्बन्ध में ऐसा कहना अनुचित होगा। अपनी बुद्धिमानी से इस नारीरत्न ने सारे भारतवर्ष के शासन की बागडोर तक अपने हाथ में ले ली थी, यही इसके जीवनचरित्र की प्रधान शोभा है। राजनीति की कठिन और कुटिल चालों के चलाने में भी इसने बड़े बड़े पुरुषों को नीचा दिखा दिया था।

पत्नी की कन्या के जन्म लेते समय कोई उसकी टहल करने को नहीं था। उस समय उसके पति की ऐसी दशा थी कि पेट भरने के लिए मोटा झोटा भोजन भी मिलना उसके लिये कठिन हो गया था। नये बच्चे के लिए भला वह क्या कर सकता था? जो कन्या आगे चल कर सारे भारतवर्ष की मालिकिन होने वाली थी, आज किसी ने उसकी ओर नेत्र उठा कर भी नहीं देखा।

गयासउद्दीन का परिवार इस नयी कन्या के लिए बड़ी कठिनाई में पड़ गया। उधर सन्तान के लिए स्नेह भी बहुत सताने लगा था। परन्तु प्रेम ममता की सारी बातें भूल उन लोगों ने रात के समय छिप कर उसको कई मुसाफिरों के बीच में रख दिया। किसी को उसके जन्म लेने की बात मालूम न होने पायी, क्योंकि संग संग चलते रहने पर भी राह में लोग कुछ न कुछ आगे पीछे हो ही जाते थे।

दूसरे दिन राहियों ने जब एक बच्चे के रोने की ध्वनि सुनी तो सब को बड़ा अचरज हुआ। बच्चे की अनुपम सुन्दरता देख एक व्यापारी को दया आ गयी। उसको दूध पिलाने का दूसरा उपाय न देख उसने उसे गयास और उसकी पत्नी को

पालने के लिए दे दिया। गयास की पत्नी अपनी ही पुत्री की धाय नियत की गयी। भगवान जिसको रखता है, इसी भांति उसकी सहायता करता है। सो माता को अपना ही कलेजे का टुकड़ा फिर अपनी गोद में लौटा पाकर जो आनन्द मिला होगा, वह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। वह बेटी का मुख चूम चूम कर परम कारुणिक भगवान को बार बार धन्यवाद देने लगी। पर कन्या को पानेवाले व्यापारी को कुछ भेद न मालूम हुआ कि यह इसी की सन्तति है, और उसने कन्या और उसकी धाय के सुख के लिए सब प्रकार के बन्दोबस्त कर दिये।

निदान सब लोग बादशाह अकबर के दरबार तक पहुंच गये। बादशाह ने गयास और उसके पुत्रों का बहुत आदर किया। उसने तुरत समझ लिया कि यह लोग बड़े तीक्ष्ण-बुद्धि और होनहार हैं। उसने उनको तुरत अच्छी नौकरियों पर नियत कर लिया। व्यापारी की पत्नी शाही महल में आती जाती थी। उसके साथ उसकी पाली हुई बेटी मेहरुन्निसा भी महल में आने जाने लगी। होते होते यह युवा हो चली। उसकी सुन्दरता में कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति थी कि जो कोई उसे देखता, उसको उसके सामने सिर नवाना ही पड़ता। इसी

समय एक दिन अकबर शाह के पुत्र सलीम ने उसे देख लिया। तब से बहुधा दोनों में भेंट हो जाती। सलीम भी रूपवान था। उसके भी युवा काल का आरम्भ था। वह अनुपम रूप-शालिनी मेहरुन्निसा की ओर आकृष्ट हो गया। एक दिन उसने मेहर का हाथ पकड़ लिया। यह बात बादशाह के कानों तक पहुँच गयी। अकबर सदा अपने अधीनस्थ मनुष्यों की मान मर्यादा की रक्षा के लिए तीखो दृष्टि रखता था। वह सलीम का आचरण सुन बहुत नाराज हुआ, और कुछ ही समय बाद उसने शेर अफगन नामी एक युवा के साथ मेहरुन्निसा का विवाह करा दिया। इसीके साथ उसने शेर अफगन को बंगाल में बर्दवान की जागीर देकर उसे वहां भिजवा दिया।

इस प्रकार अकबर मेहरुन्निसा को सलीम के पास से बहुत दूर भिजवा कर निश्चिन्त हुआ। परन्तु भगवान की इच्छा कौन मिटा सकता है? दिन बीतने लगे, मेहर भी दूसरे की हो गयी। पर सलीम उसे न भूला। जब अकबर की मृत्यु हो गयी, वही जहांगीर के नाम से बादशाह हुआ, और अनेक षडयन्त्र के बाद उसने बर्दवान में शेर अफगन से उसकी पत्नी छीन लेने की चर्चा की। जो सरदार शेर अफगन

के पास इस बात की चर्चा चलाने गया, अफ़ग़न ने क्रोध में आकर उसे वहीं पर खंजर चला कर मार डाला। परन्तु सरदार के एक काश्मीरी नौकर ने उसको भी तुरन्त वहीं पर मार गिराया। मेहरुन्निसा कैद होकर आगरा भेजी गयी।

अब इतने दिन पीछे जहांगीर ने अपनी प्रेमपात्री को अपने वश में पाकर उससे अपने साथ विवाह कर लेने की बात कही। परन्तु मेहर ने कहा, आप मेरे पति को मारनेवाले को उचित दण्ड दीजिए। इस बात से बादशाह बहुत नाराज़ हो गया, और बहुत दिनों तक उसकी पूछ पाछ न की। मेहरुन्निसा बहुत अपमानित दशा में महल में पड़ी रही।

पर बादशाह असल में उसको अब तक नहीं भूला था। उसने फिर विवाह की बात चलायी, और इस बार मेहरुन्निसा भी राज़ी हो गयी। बड़ी धूमधाम से दोनों का विवाह हुआ और मेहरुन्निसा का नाम नूरमहल पड़ा। आगे चल कर वह नूरजहान कहलायी। नूरजहान बादशाह की बेगम हो गयी। परन्तु वह अन्तःपुर में रहनेवाली दूसरी बेगमों की तरह गहने कपड़ों से सुशोभित सजधजवाली बन कर बादशाह के विलास मात्र की संगी न बनी। यदि वह यश सम्पद पाकर उसीके

मद में भूली रहती तो शायद आज दिन लोग उसका नाम मात्र ही जानते, कोई आज उसकी कथा कहने या सुनने की इच्छा न रखता। नूरजहान सच्ची सम्राज्ञी हुई। उसकी कथा कहनी हो तो जहाँगीर के राज्यकाल के इतिहास का वर्णन करना पड़ता है। राज्य के सारे काम काजों में नूरजहान भाग लेने लगी। जहांगीर को उसकी बुद्धिमानी पर इतना विश्वास हो गया था कि वह कोई काम बिना उससे पूछे न करता था। होते होते नूरजहान ही असली बादशाही करने लगी। जहांगीर नाम मात्र को बादशाह बना रहा। सिक्कों पर भी दोनों के नाम लिखे जाने लगे।

नूरजहान बड़ी बुद्धिमती थी। परन्तु उसको हमारे प्राचीन काल के पुराणों और दूसरे इतिहास आदि में वर्णित हिन्दूकुल-ललनाओं की भांति धार्मिक शिक्षा नहीं मिली थी। हिन्दू-ललनाएं अपने सभी आचरणों में धर्मभावों को मिला रखना अपना कर्त्तव्य समझती हैं। इसी लिए सीता, सावित्री, द्रौपदी, दमयन्ती आदि नारीरत्नों के पावन चरितों में शारीरिक सुख या इस लोक में होनेवाले यश, सम्पद, मान, बड़ाई आदि की ओर उतना अधिक आग्रह नहीं देखा जाता। परन्तु नूरजहान आजकल के लोगों की भांति लालसापूर्ण संसार की

प्रेमिणी थी। उसको सांसारिक मान, यश, बड़ाई आदि की चाट लग गयी थी। सो उसकी तीव्र बुद्धि समय के अनुसार राजनीति की चतुराई की ओर दौड़ने लगी।

नूरजहान को संसार में जो कुछ मिल सकता था, मिल गया। परन्तु भगवान ने उसे जहांगीर से कोई सन्तति न दी जो राज्य का अधिकारी बनता। जहांगीर के कई बेटे थे। उनमें से शाहजहां, जो बुद्धिमान और प्रतापी था, उसके बाद उसकी जगह बादशाह हुआ। नूरजहान को सदा चिन्ता लगी रहती थी कि जहांगीर के बाद यदि शाहजहां गद्दी पर बैठा तो मेरे हाथ से सारा अधिकार निकल जायगा। इसलिए वह नहीं चाहती थी कि शाहजहां राज्य का अधिकारी माना जावे। उसको शेर अफ़गन से एक लड़की थी जिसका विवाह उसने जहांगीर के एक लड़के शहरयार के साथ करवा दिया था। वह चाहती थी कि शहरयार ही गद्दी का अधिकारी मान लिया जावे। इसलिए, उसने बादशाह के कान भर भर कर उसे शाहजहां का विरोधी बना दिया। शाहजहां के जितने जागीर थे, सब छीन कर शहरयार को दे दिये। शाहजहां बड़ी चतुराई से दक्षिण देश का शासन कर रहा था। उसने कभी पिता की आज्ञाओं का विरोध नहीं किया था। परन्तु धीरे

धीरे अपने अधिकारों को छीन लिये जाते देख, जब उसको असली भेद जान पड़ा, वह आत्मरक्षा के लिए अपने पिता का विरोधी बन गया।

जहांगीर ने विरोधी पुत्र को पकड़ने के लिए सेनापति महावत खां को एक सेना लेकर भेजा। वह शाहजादे के पीछे पीछे धावा मारने लगा। शाहजहां भी आज यहां, कल वहां, करता हुआ इधर उधर भागता रहा। अन्त में कई जगह हार खाकर उसने पिता से सन्धि कर ली। पिता ने भी उसके दो लड़के दारा और औरङ्गजेब को प्रतिनिधि की भांति अपने पास रहने की आज्ञा दी। ये दोनों शाहजादे नूरजहान की देख भाल में सन् १६२६ ई० में लाहौर में रक्खे गये। शाहजहां दक्षिण चला गया।

इस समय (सन् १६२६ ई० में) महावत खां बङ्गाल में था। उसको तुरत दरबार में हाजिर होने की आज्ञा मिली। नूरजहान का भाई आसफ खां बादशाह के पास था। उससे पहिले ही से महावत खां के साथ अनबन थी। महावत खां जानता था कि वह उसे तंग करने का अवसर ढूंढ़ रहा है। सो उसने समझ लिया कि इस आज्ञा की जड़ में आसफ खां

मौजूद है और बादशाह उससे प्रसन्न नहीं हैं। वह राह में कुछ करने की आशंका मान अपने साथ चार पाँच हजार राजपूत सिपाही लेकर बादशाह के पास पहुँचा। बादशाह उस समय एक नदी किनारे छावनी डालकर पड़ा था। नदी पर एक पुल बना था। महाबत खाँ के साथ इतनी सेना देख आसफ खाँ डर गया और वह पहले ही से पुल पर होकर अपनी लश्कर के साथ नदी के दूसरे पार चला गया। हड़बड़ी में उसने इतना भी न सोचा कि बादशाह और बेगम का अकेला छोड़ जाना उचित है या नहीं। परन्तु महाबत ने ऐसा अवसर हाथ से न जाने दिया और उसने झटपट बादशाह का डेरा घेर लिया। नूरजहाँ ने इस संकट में बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। जिस समय बादशाह सेनापति महाबत खाँ के साथ बात चीत में लगे थे, नूरजहाँ एक हाथी पर सवार होकर वहाँ से निकल भागी और नदी के पार जाकर आसफ खाँ को उसकी असावधानी के लिए धमकाने लगी।

जब महाबत खाँ को बेगम के भाग जाने का पता लगा, उसने झटपट आग लगा कर नदी का पुल जला दिया जिससे बेगम के अनुचर इस पार एकदम आक्रमण न कर सकें। पर नूरजहाँ स्वयं युद्ध के लिए चली आयी। नदी के पहले

जल में उसकी सेना यहशर तितर बितर होने लगी। परन्तु बेगम ने कहा, यह आगा पीछा करने का समय नहीं है। झपट दुश्मन पर हमला करो, नहीं तो वह निकल जायगा।

उधर शत्रु भी आगे बढ़ आये। बेगम की सेना भाग चली। नूरजहान का शरीर लोहूलुहान हो गया। इतना किया, पर बादशाह को वह न छुड़ा सकी। बादशाह ज्यों का त्यों महावत खां के पास नजरबन्द ही रह गया। आसफ खाँ ने भाग कर अटक के किले में शरण ली।

जहांगीर ने इस विपत्ति में धीरज न छोड़ा। उसने मीठी मीठी बातों से महावत खां को अपना मित्र बना लिया। महावत खां ने सोचा कि बादशाह उसके वश में हो गया है। इस लिए उसने गर्वित होकर उमरावों का अपमान करना आरम्भ कर दिया और वे सब लोग उसके विरोधी बन बैठे। पर नूरजहान जब खुल्लमखुल्ला महावत खां को न दबा सकी तो वह स्वयं एक सेना इकट्ठी करने लगी और महावत खां को नीचा दिखाने का अवसर ढूंढ़ने लगी। वह उमरावों के साथ महावत खां के विद्वेष को फूंक फूंक कर सुलगाने लगी और एक दिन महावत खां के राजपूतों को असावधान पाकर बाद-

शाह के डेरों पर आ धमकी और उसे छुड़ा कर साफ निकाल ले गयी। इस बार महाबत खां को भागना पड़ा। निदान बेगम की चतुराई से जहांगीर अपने चतुर सेनापति की चंगुल से बच कर फिर स्वाधीन हो गया।

परन्तु कुछ काल से उसका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। अन्त में ५८ वर्ष की उम्र में सन् १६२७ ई० के अक्तूबर मास की २८ तारीख को जहांगीर अपना अनित्य शरीर छोड़कर नित्यधाम को चल बसा।

नूरजहान चाहती थी कि शहरयार बादशाह बने। पर वह बड़ा मूर्ख था। लोग उसे नाशुदनी के नाम से पुकारते थे। शहरयार लाहौर में था। बादशाह की मृत्यु का समाचार सुनते ही उसने सरकारी खजाने पर अधिकार कर लिया और झटपट सेना संग्रह कर शाही गद्दी ले लेने का यत्न करने लगा। उधर नूरजहान के भाई आसफ खां ने—जिसकी बेटी मुमताजमहल शाहजहां की प्यारी पत्नी थी—शाहजहां के पास समाचार भेज दिया। दोनों दलों में लाहौर के पास ही एक युद्ध हुआ। परन्तु शहरयार युद्ध में हार गया। तब आसफ खां शाहजहां के दोनों नजरबन्द पुत्रों को संग लेकर आगरा

गया। वहां शाहजहां भी आकर गद्दी पर बैठ गया। इस समय से बेगम नूरजहान का सारा अधिकार टूट गया। शाहजहां ने बादशाह होकर नूरजहान के लिए वार्षिक २ लाख रुपये की वृत्ति नियत कर दी। पर सुना जाता है कि उसने उसके साथ और किसी प्रकार का अच्छा सलूक नहीं किया।

जहांगीर के मृत्यु के पीछे नूरजहान हिन्दू विधवाओं की भांति श्वेत वस्त्र पहिन कर रहने लगी। अपनी इच्छा से वह कभी किसी प्रकार के उत्सव या राग रंग में नहीं मिलती। अपना मन मार कर निराले में दिन काटा करती। ७२ वर्ष की उम्र में, सन् १६४५ ई० की ८ वीं दिसम्बर को, वह लाहौर में परलोक को सिधार गयी। पति की समाधि के पास शाहदरा में उसने अपने लिए जो समाधि बनवा रक्खी थी, उसका नाशवान शरीर उसीमें गाड़ा गया।

प्रजावर्ग नूरजहान को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता था। उसने कभी किसी प्रार्थी को उसकी इच्छा पूरी किये बिना नहीं लौटाया। वह बहुतेरी अनाथ लड़कियों को धन देकर सहायता करती थी। लगभग ऐसी ५०० लड़कियों का उसने अपने धन से विवाह तक करवा दिया था।

साम्राज्य इसी रूप के आकर्षण ही से उसके हाथों लगा था। साथ ही बुद्धिमानी, उच्च आशा, कार्यकुशलता और सबसे ऊपर राजनीति की चालों ने उसका अधिकार बहुत दृढ़ बना दिया था।

मनुष्य जिन बातों की चाह रखता है, नूरजहान को वे सब मिल सकी थीं। नहीं मिला तो उसको एक पुत्र—राज्य का उत्तराधिकारी नहीं मिला। तब उसने अपने पहिले पति की कन्या लाड़ली बेगम से शहरयार का विवाह कर दिया और वह उसी को शाही गद्दी पर बैठाना चाहती थी, क्योंकि शहरयार यदि बादशाह हो जाता तो नूरजहान का अधिकार अटूट बना रहता। इसी लिए बादशाह का श्रेष्ठ पुत्र शाहजहां उसकी आँखों में खटकता रहा। इसी लिए उसने बाप बेटे में फूट करवा दी। परन्तु इतनी चतुराई, इतनी चालबाज़ी कुछ काम न आयी। जो होने को था सोई हुआ। शाहजहां ही शाही गद्दी का अधिकारी बना। नूरजहान का अधिकार टूट गया। ईश्वर की इच्छा के आगे चतुर मनुष्य की चतुराई नहीं चलती। नूरजहान का यह कलङ्क का टीका किसी तरह नहीं मिट सकता।